नयी सीमायें नयी सम्भावनायें

भारत-सोवियत सम्बन्ध

जगदीश विभाकर

नयी सीमायें नयी सम्भावनायें

भारत-सोवियत सम्बन्ध

जगदीश विभाकर

लेखकीय

भारत-सोवियत सहयोग और सम्बन्ध दोनों देशों के लिये ही नहीं, बल्कि समूचे विश्व में स्वतंत्रता, शान्ति और प्रगति के लिये महत्त्वपूर्ण उपादान हैं। दोनों देशों की घनिष्ठ मित्रता तथा सिद्धान्तनिष्ठ नीतियों ने विश्व के अनेक भागों को युद्ध के कगार से बचाया है और वहाँ शान्ति स्थापित करने में अभूतपूर्व भूमिका अदा की है।

भारत में और विदेश में ऐसे प्रतिक्रियावादी तत्त्वों की कमी नहीं है जो भारत-सोवियत मैत्री को बदनाम करने के लिये निरन्तर सक्रिय रहते हैं; किन्तु यह सर्वविदित है कि दोनों देशों के बीच सम्बन्ध शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। और अतीत की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि सोवियत संघ भारत की आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के साथ-साथ उसकी राजनीतिक स्वतंत्रता को सुदृढ़ बनाने का प्रबल समर्थक व सहायक है।

भारत-सोवियत शान्ति, मित्रता व सहयोग की सन्धि और लियोनिद ब्रेजनेव की भारत-यात्रा ने दोनों देशों के परस्पर लाभप्रद सहयोग को और अधिक संवर्धनशील बनाने में अपूर्व योगदान किया है तथा इससे सहयोग की जो दिशाएँ उन्मुक्त हुई हैं उनसे आर्थिक क्षेत्र में भारत का आत्मनिर्भर होना निश्चित हो गया है। इस पुस्तक में इन सब तथ्यों का विवेचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

मेरी पत्नी ऊषा ने पुस्तक के रचनाकाल में जो अप्रतिम सहयोग दिया तथा सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कीं उनके बिना मैं यह पुस्तक न लिख पाता—यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है। लेकिन ऊषा के प्रति आभार व्यक्त करने की औपचारिकता मुझे उचित प्रतीत नहीं होती।

पुस्तक में जो कमियाँ व ग़लतियाँ रह गई हैं उनका मैं ज़िम्मेदार हूँ।

नई दिल्ली,
जुलाई, 1975

—जगदीश विभाकर

"हमारी मैत्री के विकास की तुलना शिखर-आरोहण से की जा सकती है; हम जितना ही ऊपर चढ़ते जाते हैं, उतने ही विशाल क्षितिज हमारे सामने खुलते जाते हैं और जी चाहता है कि अधिकाधिक ऊँचाई पर चढ़ते जायें ताकि सर्वदा नूतन और आकर्षक वातायन हमारे सामने उन्मुक्त होते रहें।"

—लियोनिद ब्रेज़नेव

(लाल क़िले के मैदान में 27 नवम्बर, 1973 को आयोजित नागरिक अभिनन्दन में दिये गये भाषण का एक अंश)

विषय-क्रम

1 एक निरन्तर प्रक्रिया

भारत-अमरीकी सम्बन्धों में निरन्तर परिलक्षित होने वाले उतार-चढ़ावों की तुलना में भारत-सोवियत मैत्री निरन्तर विकास की प्रक्रिया है। जिन व्यक्तियों ने यह सोचा था कि अगस्त 1971 में हस्ताक्षरित शान्ति, मित्रता व सहयोग की सन्धि दोनों देशों के प्रगाढ़ सम्बन्धों की चरम परिणति है उन्हें कुछ ही महीनों के बाद इस मित्रता का नया शिखर देखने को मिला—पूर्वी बंगाल की जनता के मुक्ति-संघर्ष के दौरान सोवियत संघ व भारत की घनिष्ठ समझ और राजनयिक क्षेत्र में इनके प्रभावक कार्यकलाप ने गणप्रजातंत्री बंगला देश के अभ्युदय में योगदान किया तथा इस उपमहाद्वीप को युद्ध की भीषण ज्वाला में झुलसने से बचा लिया। वस्तुतः, महान् मित्रता की यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी।

लियोनिद ब्रेज़नेव ने जब शान्ति व तनाव-शैथिल्य की खोज में फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी और अमरीका की राजधानियों की यात्रा की तथा सोवियत संघ के शान्ति कार्यक्रम की पूर्ति में महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कीं और विभिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों से शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धान्तों को मान्यता दिलवाई तब अनेक वर्गों में यह सन्देह व्यक्त किया गया कि पूंजीबादी देशों से वार्ताओं व समझौतों का विचार नव-स्वतंत्र देशों के हितों के प्रतिकूल व घातक है। यह भी कहा गया कि सोवियत संघ की विदेश नीति में अब भारत का पहले जैसा स्थान नहीं रह जायेगा। लेकिन नवम्बर 1973 में लियोनिद ब्रेज़नेव की भारत-यात्रा ने इन सन्देहों को दूर कर दोनों देशों में मित्रता के विद्यमान सम्बन्धों को अधिक प्रगाढ़ किया। इस यात्रा के दौरान उनका भव्य स्वागत किया गया। उन्होंने श्रीमती इन्दिरा गांधी व अन्य नेताओं से बातचीत की और अनेक दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर किये, जिनका प्रभाव भारत की आर्थिक प्रगति पर और इस क्षेत्र में शान्ति का वातावरण बनाने में लम्बे असें तक अनुभव किया जाता रहेगा।

सितम्बर 1971 में श्रीमती इन्दिरा गांधी की सोवियत संघ की यात्रा के बाद, सोवियत राष्ट्रपति निकोलाई पोदगोर्नी द्वारा अपनी उत्तरी वियतनाम की यात्रा के समय 1 अक्तूबर, 1971 तथा 14 जून, 1972 को नई दिल्ली में अल्प-प्रवास के बाद लियोनिद ब्रेज़नेव का भारत-आगमन दोनों देशों के सम्बन्धों में अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण घटना थी। इन यात्राओं के बीच की अवधि में मंत्रियों व अन्य उच्च पदाधिकारियों के नेतृत्व में अनेक प्रतिनिधिमंडलों ने भारत व सोवियत संघ की यात्राएं कीं तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर वैचारिक आदान-प्रदान किया और शान्तिप्रिय जनता में मैत्री व सहयोग के मौजूदा सम्बन्धों को अधिक सशक्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

भारत की जनता व नेताओं ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के महासचिव लियोनिद ब्रेज़नेव की 26 से 30 नवम्बर, 1973 तक की राजकीय मैत्रीपूर्ण भारत-यात्रा की घोषणा का स्वागत किया।

सोवियत पत्रकारों से साक्षात्कार में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा, "महामहिम लियोनिद ब्रेज़नेव का स्वागत करने में हमें गौरव व आनन्द की अनुभूति हो रही है। वह हमारे लिए अजनबी नहीं हैं। वह पहले भी यहां आ चुके हैं और हमारे अनेक नेता सोवियत संघ जाते रहे हैं। हमारी जनता उन्हें एक महान् राष्ट्र के प्रमुख नेता के रूप में जानती है। अपने राष्ट्र के निर्माण में और विश्व में शान्ति मज़बूत करने में उनकी महान् व्यक्तिगत विशेषताओं और उनके ठोस कार्य की हम प्रशंसा करते हैं। शान्ति के लिए उनके हाल के प्रयासों को हम सम्मान व आशान्वित भाव से देखते हैं। उनके इस कार्य में हम और अधिक सफलता की कामना करते हैं। उनकी यात्रा मेरे सहयोगियों को व मुझे सोवियत संघ की ताज़ा प्रगति से परिचित करायेगी। भारत की जनता भारत-सोवियत मैत्री के प्रति अपने उच्च मूल्यांकन तथा महामहिम लियोनिद ब्रेज़नेव, सोवियत संघ के नेताओं व सोवियत जनता के प्रति अपने सम्मान को व्यक्त कर सकेगी।"

मास्को से प्रकाशित 'न्यू टाइम्स' साप्ताहिक को दी गयी एक भेंट-वार्ता में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव चन्द्रजीत यादव ने ब्रेज़नेव की भारत यात्रा के महान् राजनैतिक महत्त्व पर ज़ोर दिया और कहा कि यह यात्रा ऐसे समय पर हो रही है, "जब विश्व एक मोड़ पर खड़ा है—जब शान्ति और प्रगति की शक्तियों का साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के मुक़ाबले पलड़ा भारी हो रहा है, जब विश्व तनाव-शैथिल्य की ओर बढ़ रहा है, जब इतिहास में पहली बार स्थायी शान्ति की स्थापना एक निकटवर्ती एवं ठोस लक्ष्य बन रही है।"

लियोनिद ब्रेज़नेव को 'सार्वभौमिक शान्ति' का 'अथक सेनानी' एवं 'शान्तिदूत' और 'राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का सच्चा समर्थक, प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ रहे नव-स्वतंत्र राज्यों का सच्चा मित्र और मानव जाति की प्रगति का दृढ़ समर्थक' बताते हुए भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय परिषद् के महासचिव सी० राजेश्वर राव ने विश्वास प्रकट किया कि यह यात्रा, "भारत और सोवियत संघ में अनेक वर्षों से सफलता के साथ विकसित हो रहे मैत्री-सम्बन्धों के और अधिक दृढ़ीकरण की दिशा में अत्यधिक योगदान करेगी।" तथा "हमारे उपमहाद्वीप

में स्थायित्व का और अधिक सामान्यीकरण तथा इस क्षेत्र के राज्यों में अच्छे पड़ोसी-सम्बन्धों की स्थापना सुगम" करेगी।

यात्रा की घोषणा होने के तत्काल बाद उन क्षेत्रों ने जो भारत-सोवियत मित्रता की बढ़ोतरी फूटी आँख भी नहीं देख सकते, अनेक प्रकार के मनगढ़ंत आरोप लगाने आरम्भ कर दिये। मिथ्या प्रचार यहाँ तक किया गया कि ब्रेज़नेव की भारत-यात्रा का मुख्य उद्देश्य हिन्द महासागर में सोवियत नौसैनिक अड्डा क़ायम किये जाने के लिए भारत सरकार पर दबाव डालना है तथा भारत को चीन-विरोधी 'एशियाई सामूहिक सुरक्षा प्रणाली' के सैनिक गुट में धकेलना है। कुछ ने तो यहाँ तक आरोप लगाया कि सोवियत संघ से किसी-न-किसी रूप में भारत की आज़ादी को ख़तरा पैदा हो गया है तथा हिन्द महासागर में 'बड़ी शक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता' बढ़ रही है।

भारत-सोवियत मित्रता के विरुद्ध चीनी नेताओं ने जो अपना विषाक्त व शत्रुतापूर्ण आन्दोलन छेड़ा हुआ था उसे ब्रेज़नेव की भारत-यात्रा की पूर्ववेला पर उन्होंने और अधिक तेज़ कर दिया।

लियोनिद ब्रेज़नेव के दिल्ली-प्रवास के पाँच घटनापूर्ण दिवस और उसके परिणामों ने पेशेवर सोवियत-विरोधियों और उनके पिछलग्गुओं द्वारा फैलायी गयी तरह-तरह की झूठी बातों एवं उत्तेजनापूर्ण कहानियों को ख़त्म कर दिया। समाज के सभी हिस्सों ने जिस सहज रूप और हार्दिक प्रेम से उनका स्वागत किया, इस यात्रा के प्रति लोगों ने जितनी अधिक दिलचस्पी दिखाई, जनसभाओं में लोगों ने जिस प्रकार उनके भाषणों को ध्यानपूर्वक सुना, उन्होंने जितनी सुस्पष्टता से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और सोवियत विदेशनीति को बतलाया, जो समझौते हुए उनका कितना दूरगामी महत्त्व है—ये सब इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के महासचिव की यात्रा, भारत-सोवियत सांस्कृतिक सोसायटी की राष्ट्रीय परिषद् के अध्यक्ष के० पी० एस० मेनन के शब्दों में सोवियत संघ और भारत के बीच "उत्तरोत्तर लम्बी होती जाती, उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती जाती मित्रता की शृंखला की एक स्वर्णिम कड़ी है। इस यात्रा ने मूल्यवान फल दिये हैं जिनसे न केवल हमारे दोनों जनगण के परस्पर लाभ के लिए उभयपक्षीय सम्बन्ध दृढ़ होंगे बल्कि एशिया में शान्ति और स्थायित्व की ध्येय-सिद्धि भी होगी। हम अपनी यात्रा में आगे बढ़ते हुए एक नये मील-चिह्न पर पहुँच चुके हैं। भारत और सोवियत संघ के बीच राजनीतिक, आर्थिक, प्राविधिक, सांस्कृतिक तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में सर्वतोमुखी सहयोग का भव्य मार्ग तैयार किया गया है। आत्म-निर्भरता तथा आर्थिक स्वाधीनता के अपने संजोये लक्ष्यों की प्राप्ति में—अपने सपनों के भारत के पुनर्निर्माण में हमारी जनता के सम्मुख नये क्षितिज और नयी सम्भावनाओं के द्वार उन्मुक्त हो गये हैं।

ऐसे हठधर्मी और विद्वेषी लोगों का मुँह बन्द करना कठिन है जो अत्यधिक साधारण बातों के अनिष्टकारी अर्थ निकालते हैं। संयुक्त घोषणा में जितने व्यापक पैमाने पर आर्थिक सहयोग की परिकल्पना की गयी, उसके महत्त्व को कम करके आँकने के कारण वे भारतीय और सोवियत अर्थ-तन्त्रों के तथाकथित 'गठजोड़' पर घड़ियाली आँसू बहाने लगे और उन्होंने सोवियत हस्तक्षेप के भूत को फिर से जीवित कर दिया। परन्तु इस प्रलाप का उत्तर श्रीमती गांधी ने स्वयं कारगर ढंग से दे दिया है। ब्रेज़नेव के प्रवास से दौरान और उसके तत्काल बाद के अपने भाषणों में ऐसे सभी आरोपों का ज़ोरदार ढंग से उन्होंने प्रतिकार किया और घोषणा की कि सोवियत संघ ने भारत के प्रति सर्वदा 'सच्ची मैत्री' दिखलायी है। उन्होंने कहा कि इस मैत्री के आलोचक यद्यपि समय-समय पर ज़्यादा शोरगुल मचाने लगते हैं, पर उन्होंने कभी अपने आरोपों को प्रमाणित करने की परवाह नहीं की। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि सोवियत संघ ने भारत के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप करने का या अपनी शर्तें लादने का कभी प्रयत्न नहीं किया है।

'द हिन्दुस्तान टाइम्स' ने जिसे किसी भी स्थिति में सोवियत संघ के प्रति पक्षपातपूर्ण नहीं कहा जा सकता, यह लिखा कि सोवियत नेता की यात्रा व सम्पन्न क़रार 'मित्रतापूर्ण सहयोग में एक प्रशंसनीय प्रयास' है। इसने आगे कहा : "एशिया में भारत और सोवियत संघ के बीच हित की पर्याप्त समानता है और यह आवश्यक है कि उसे अपने ढंग से मान्यता दी जाये...भारत सोवियत संघ के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना सोवियत संघ भारत के लिए है...भारत-सोवियत सम्बन्ध भारत और इस क्षेत्र के किसी अन्य देश के साथ मैत्री और सहयोग के विकास में बाधक नहीं बनते।" सम्पादकीय में इस बात पर खेद प्रकट किया गया कि कुछ क्षेत्र "श्री ब्रेज़नेव की यात्रा का ग़लत अर्थ लगाना और समान तथा फलप्रद सहयोग की स्नेहपूर्ण अभिव्यक्ति को बुरे अर्थ में लेना चाहते हैं।"

सोवियत नेताओं ने इस तथ्य की अनेक बार पुष्टि की है कि उनके द्वारा भारत तथा तमाम विकासशील देशों को दी जाने वाली सहायता निःस्वार्थ होती है। जून 1960 में ही तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के सम्मान में मास्को में आयोजित सोवियत-भारत मैत्री सभा में भाषण करते हुए सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमंडल के उस समय अध्यक्ष लियोनिद ब्रेज़नेव ने कहा था :

"भारत को हमारी सहायता निःस्वार्थ है। इसमें ऐसी कोई राजनीतिक शर्त नहीं जुड़ी है जो भारत राज्य की प्रभुसत्ता को प्रभावित करे या उसके आर्थिक अथवा राजनीतिक हितों में बाधक बने।"[1]

1. फ़ौरेन अफ़ेयर्स रेकार्ड, खण्ड 6, नं० 6, जून 1960

इस प्रकार के अनेक वक्तव्य उद्धृत किये जा सकते हैं लेकिन यहाँ ऐसा करना सम्भवत: आवश्यक नहीं है। लियोनिद ब्रेज़नेव की यात्रा के अन्त में जारी किये गये दस्तावेज़ों का गम्भीर व वस्तुगत विश्लेषण यह स्पष्ट करेगा कि उनमें महत्त्व-पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर दोनों देशों का समान दृष्टिकोण परिलक्षित है तथा इन समस्याओं का जनवादी समाधान दोनों देशों के हितों के अनुकूल है।

अतः, संयुक्त घोषणा में दोनों पक्षों ने भारत और सोवियत संघ में सहयोग और मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के सफल विकास पर अपना 'गहन-सन्तोष' व्यक्त किया। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति यानी वियतनाम, कोरिया, बंगलादेश, पश्चिम एशिया के 'प्रमुख प्रश्नों' पर और आम एवं पूर्ण निरस्त्रीकरण तथा उपनिवेशवाद, नव-उपनिवेशवाद, नस्लवाद के अवशेषों को तथा जातीय पृथग्वासन की नीति को खत्म करने के अपने प्रयास जारी रखने में दोनों देशों की स्थिति की 'सादृश्यता या निकटता' पर 'सन्तोष' व्यक्त किया।

भारतीय उपमहाद्वीप की समस्याओं के सम्बन्ध में दोनों देशों ने विश्वास व्यक्त किया कि जो 'विवादग्रस्त समस्याएँ' अब भी मौजूद हैं, उन्हें सम्बन्धित देशों द्वारा, किसी भी प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप के बिना, आपसी बातचीत के ज़रिए सुलझाया जा सकता है और अवश्य सुलझाया जाना चाहिए।

सोवियत विदेश नीति का उच्च मूल्यांकन करते हुए, जिसका सुसंगत लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को सुदृढ़ बनाना, राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सहयोग को मज़बूत बनाना और उपनिवेशवाद के विरुद्ध तथा देशों की राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता को सुदृढ़ बनाने के लिए संघर्षरत जनगण को समर्थन प्रदान करता रहा है, श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य अमरीका के बीच तनाव में कमी होने का 'स्वागत' किया तथा उसे 'विश्व में तनाव कम करने की दिशा में एक क़दम' बताया।

हिन्द महासागर का क्षेत्र चिन्ता और परेशानी का क्षेत्र बन गया है। अमरीका वहाँ अपने नौसैनिक अड्डों को बढ़ाकर उस पर अपना नायकत्व स्थापित करने की कोशिश कर रहा है। भारत और सोवियत संघ दोनों ने ही संयुक्त घोषणा में अपनी इस तत्परता की पुनर्पुष्टि की कि "वे सभी सम्बद्ध राज्यों के साथ मिलकर समान आधार पर," हिन्द महासागर को "शान्ति के क्षेत्र में बदलने के प्रश्न का अनुकूल समाधान खोजने में भाग लेंगे।"

भारत और सोवियत संघ ने यह विश्वास व्यक्त किया कि एशिया को स्थायी शान्ति, स्थायित्व तथा अच्छे सहयोग के महाद्वीप के रूप में बदल देने से निस्सन्देह देशों के बीच सम्बन्धों को और सामान्य बनाने तथा सार्वभौमिक शान्ति सुदृढ़ करने में सहायता मिलेगी।

आर्थिक एवं व्यापारिक सहयोग को और अधिक विकसित करने से सम्बन्धित

पन्द्रह-वर्षीय क़रार में भारतीय अर्थतंत्र की लगभग तमाम दिशाओं में इस सहयोग के प्रसार की संकल्पना की गई है।

दोनों देशों के बीच एक नया और सर्वाधिक रचनात्मक क़रार हुआ, जो भारत के योजना आयोग और सोवियत राज्य योजना समिति (सोवियत संघ का गोसप्लान) के बीच सम्पन्न हुआ था जिसके अनुसार आर्थिक, वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग के लिए भारत-सोवियत अन्तर-सरकारी आयोग के ढाँचे के अन्तर्गत योजना के क्षेत्र में सहयोग के लिए भारत-सोवियत संयुक्त अध्ययन दल स्थापित किया जाना था।

और अब, जब कि इस यात्रा को डेढ़ वर्ष से अधिक समय हो चुका है, भारत-सोवियत सम्बन्धों के जो नये आयाम विस्तृत हुए हैं उन्हें देखना आसान है। लियोनिद ब्रेज़नेव की यात्रा की प्रथम वर्षगाँठ के अवसर पर के० पी० एस० मेनन ने भारत-सोवियत सांस्कृतिक सोसायटी की तमाम शाखाओं से अपनी अपील में उचित ही कहा था : "श्री ब्रेज़नेव की यात्रा द्वारा अनुमोदित व दृढ़ किया गया मित्रता का यह बन्धन भारत द्वारा अपने पैरों पर खड़े होने के और प्रतिक्रियावादी तत्त्वों—बाह्य व आन्तरिक—की घातक कोशिशों का सामना करने के, भारतीय अर्थतंत्र—न केवल अर्थतंत्र पर ही—पर उनकी पकड़ मज़बूत करने की कोशिशों को नाकाम करने के भारत के प्रयासों में असीम मूल्यवान योगदान रहा है।"

'इस्कस' को अपने एक सन्देश में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस यात्रा को "भारत-सोवियत सम्बन्धों के सुदृढ़ीकरण में एक महत्त्वपूर्ण घटना" कहा था।[1]

सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद की वैदेशिक आर्थिक सम्बन्धों की राज्य समिति के उपाध्यक्ष ए० आई० अलिखांनोव ने ब्रेज़नेव यात्रा के दौरान हस्ताक्षरित दस्तावेज़ों के महत्त्व पर ज़ोर देते हुए कहा था कि "सोवियत-भारत सहयोग स्थायित्व की स्थिति पर पहुँच गया है जिससे किसी सीमा तक हम आगामी अनेक वर्षों के लिए आर्थिक-सम्बन्धों का नियोजन कर सकते हैं।"

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के वैदेशिक सम्बन्धों के विभाग की सचिव श्रीमती अम्बिका सोनी ने कहा था : "इस यात्रा ने दोनों देशों के जनगण में बेहतर समझ और घनिष्ठ मित्रता का एक नया अध्याय शुरू किया था। यह तथ्य स्वयं अन्तर-सरकारी स्तर पर सम्बन्धों के विकास में योगदान करता है। प्रत्येक पक्ष का विश्वास है कि उसे प्रत्येक क़दम की व्याख्या नहीं करनी पड़ेगी तथा उसके कार्यकलापों को ग़लत नहीं समझा जायेगा। विचारों की समानता या समीपता दोनों देशों के हित में तथा समग्र मानवजाति के हित में संयुक्त कार्रवाइयों का पथ प्रशस्त करती है।"

1. एमिटी, खण्ड 3, अंक 11, नवम्बर 1974

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमण्डल के अध्यक्ष निकोलाई पोदगोर्नी को 12 फ़रवरी, 1975 को मास्को में अपने प्रत्यय-पत्र पेश करते हुए भारतीय राजदूत दुर्गाप्रसाद धर ने कहा था :

"हमारे नेता व हमारी जनता सोवियत संघ की जनता व इसके नेताओं को अपने देश का घनिष्ठतम मित्र मानते हैं। हमारे बीच मित्रता लम्बे अर्से से चली आ रही है और समय की कसौटी पर खरी उतरी है। हमें अपने अनुभव से यह मालूम है कि कठिनाई के क्षण में हम सोवियत संघ पर एक सच्चे मित्र के रूप में निर्भर कर सकते हैं।

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के महासचिव लियोनिद ब्रेज़नेव की नवम्बर 1973 की भारत यात्रा हमारे सम्बन्धों में एक नया मील-चिह्न था। भारतीय जनता द्वारा लियोनिद ब्रेज़नेव का जो मैत्रीपूर्ण व सौहार्दपूर्ण स्वागत किया गया वह सोवियत संघ के लिए उनके सम्मान व प्रशंसा का एक ठोस उदाहरण है।"

निकोलाई पोद्गोर्नी ने कहा :

"सोवियत संघ भारत गणराज्य के शान्तिप्रिय राजनीतिक पथ व इसकी गुट-निरपेक्षता की नीति का अधिक सम्मान करता है। हमें आज भी प्रमुख समस्याओं पर सोवियत संघ व भारत की समान या निकट स्थिति देखकर प्रसन्नता होती है जिससे विश्व रंगमंच पर हमारे देशों के बीच सहयोग का और अधिक प्रसार करने का एक मज़बूत आधार मिलता है। विश्व में तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया के सुदृढ़ीकरण का विकास होता है, जो इस प्रक्रिया को एक स्थायी व अविचल प्रकृति प्रदान करता है।"

उन्होंने सशक्त शब्दों में पुनर्पुष्टि की : "हमारी पार्टी की केन्द्रीय समिति व सोवियत सरकार ने भारत गणराज्य के साथ सम्बन्धों के सर्वांगीण विकास को हमेशा बहुत महत्त्व दिया है, तथा इनके और अधिक विस्तार व सुदृढ़ीकरण में अपनी भरसक कोशिश करेंगे।"

आगे के अध्यायों में हम संवर्धनशील भारत-सोवियत मित्रता की पृष्ठभूमि में लियोनिद ब्रेज़नेव की यात्रा द्वारा उन्मुक्त नयी सम्भावनाओं का विवेचन करेंगे और देखेंगे कि वे किस प्रकार कार्यान्वित की जा रही हैं।

2

पड़ोसियों में शान्ति

भारतीय उपमहाद्वीप में असामान्य स्थिति केवल साम्राज्यवादी और माओवादी क्षेत्रों के लिए ही हर्ष का कारण हो सकती है क्योंकि विश्व में वे ही ऐसी ताक़तें हैं जो भूमण्डल के हर शान्तिमय क्षेत्र पर युद्ध के बादल मंडराते देखना अपना लक्ष्य समझती हैं। इस सम्बन्ध में विभिन्न समस्याओं एवं अनेक देशों के पक्षों का, विशेषत: भारत व सोवियत संघ के पक्षों का (1971 में हस्ताक्षरित भारत-सोवियत सन्धि के बाद की अवधि में) विवेचन हमें उन्हें सही प्रकार से समझने और उनके विकास में साधक सिद्ध होगा।

शान्ति, मित्रता और सहयोग की भारत-सोवियत सन्धि शान्ति के प्रसार में दोनों देशों के सकारात्मक दृष्टिकोण व नीतियों की द्योतक है। यह सन्धि युद्ध के भयावह वातावरण में सम्पन्न हुई थी और जैसा कि श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था कि वह समय हमारे देश की सुरक्षा के लिए 'प्रमुख चैलेंज' था। पश्चिमी पाकिस्तान की सैनिक तानाशाही ने पूर्वी बंगाल में आतंक का साम्राज्य क़ायम कर लाखों शरणार्थियों को सीमा पार कर भारत में शरण लेने के लिए विवश कर दिया और इस प्रकार भारत की प्रभुसत्ता को ख़तरा पैदा हो गया और इसके अर्थतंत्र का स्थायित्व खतरे में पड़ गया। इसके साथ-साथ संयुक्त राज्य अमरीका और चीनी नेताओं का धमकी-भरा रुख एक और खतरा था। इन सबने 1971 के मध्य में एक तनावपूर्ण वातावरण की सृष्टि कर दी। ऐसी स्थिति में 8 अगस्त, 1971 को सोवियत विदेशमंत्री ए० ए० ग्रोमिको भारत आए और 9 अगस्त को, यानी ग्रोमिको के भारत आने के 24 घंटे के अन्दर ही सन्धि सम्पन्न होने से सारा वातावरण बदल गया।

सन्धि पर हस्ताक्षर के समारोह में बोलते हुए, ए० ए० ग्रोमिको ने कहा कि इस सन्धि से भारत-सोवियत सम्बन्धों को और भी दृढ़ राजनीतिक और क़ानूनी आधार मिल गया है। इसी प्रकार सरदार स्वर्णसिंह ने ज़ोर देकर कहा : "हम मानते हैं कि यह सन्धि इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि दो मित्र-देशों के बीच सम्बन्धों का विकास किस प्रकार किया जा सकता है और किस प्रकार किया जाना चाहिए और किस प्रकार वे न केवल एक-दूसरे के हितों को पूरा कर सकते

हैं वरन् इस क्षेत्र, सम्पूर्ण एशिया एवं विश्व में शान्ति एवं सुरक्षा को दृढ़ करने में सहायक हो सकते हैं।"

भारत और विदेश में सन्धि के आलोचकों ने कहा कि यह सन्धि हर हालत में 'अनावश्यक' और भारत के हितों के लिए 'खतरनाक' तथा भारत की परम्परागत गुटनिरपेक्षता की नीति के लिए 'धक्का' थी। इस आरोप का खण्डन करते हुए कि यह सन्धि हमें गुटनिरपेक्षता की नीति से विमुख करती है, विश्व शान्ति परिषद् के महासचिव रमेशचन्द्र को दी गई एक भेंटवार्ता में श्रीमती इन्दिरागांधी ने कहा: "गुटनिरपेक्ष देशों के राष्ट्रीय हित की सैनिक प्रसारवाद से सुरक्षा करनी होती है...सुरक्षा इस प्रकार की जानी चाहिए कि जो आधिपत्य या लड़ाई-झगड़ों को समाप्त कर सके और स्थायी शान्ति सुनिश्चित कर सके। संक्षेप में यही इस सन्धि का कार्य है।"[1]

पाकिस्तान की युद्ध लोलुपता और भारत के विरुद्ध उसकी लगातार धमकियों के वातावरण में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 27 से 29 सितम्बर, 1971 तक सोवियत संघ की सरकार के निमंत्रण पर सोवियत संघ की यात्रा की। इस यात्रा का उद्देश्य यह था कि नई दिल्ली में अगस्त में जो बातचीत प्रारम्भ हुई थी, उसे उच्चतम स्तर तक ले जाया जाए। श्रीमती इन्दिरा गांधी के सम्मान में सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष कोसीगिन ने 28 सितम्बर को अपराह्न भोज दिया। इस अवसर पर अपने भाषण में कोसीगिन ने कहा कि सन्धि से "हमारे दोनों देशों के लिए नई सम्भावनायें प्रस्फुटित हुई हैं और हम यह कह सकते हैं कि हमारे देशों में भिन्न सामाजिक पद्धतियाँ होने के बावजूद हम दोनों शान्तिपूर्ण रचनात्मक योजनाओं के कार्यान्वियन के हितों में, एशिया और समग्र विश्व में शान्ति के ध्येय के हितों में कंधा से कंधा मिलाकर काम कर सकते हैं।"

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने भाषण के दौरान कहा : "विश्व के विभिन्न भागों में भारत-सोवियत मित्रता के स्वभावगत आलोचकों तक ने सन्धि के महत्त्व को महसूस किया है। फिर भी भारत में और विदेशों में कुछ ऐसे लोग हैं, जो इसके अर्थ व उद्देश्य को ग़लत ढंग से पेश करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन मुझे यक़ीन है कि आने वाले महीनों व वर्षों में वे भी यह अनुभव करेंगे कि इस सन्धि से अपेक्षाकृत स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के विकास में सहायता मिली है।" उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया कि किसी 'नाज़ुक मौक़े' पर भारत और सोवियत संघ में समझ "न केवल भारतीय उपमहाद्वीप में बल्कि एशिया और समग्र विश्व में शान्ति, सुरक्षा और प्रगति को और अधिक सुदृढ़ करेगी।"

उपर्युक्त अपराह्न भोज में ही पूर्वी बंगाल के विषय पर बोलते हुए कोसीगिन

1. पैट्रिअट, 30 अगस्त, 1971

ने कहा : "पाकिस्तान के शासकों के कार्यों को उचित ठहराना असम्भव है जिसकी वजह से 80 लाख से भी अधिक लोगों को अपना देश, अपनी भूमि और सम्पत्ति छोड़कर पड़ोसी देश भारत में शरण लेने के लिए मजबूर होना पड़ा।" अलेक्सेई कोसीगिन ने कहा कि सभी देशों के लोग पाकिस्तान के अधिकारियों से यह आशा करते हैं कि जल्द ही पूर्वी बंगाल की समस्या का कोई राजनीतक समाधान निकाला जायेगा। "इस नाज़ुक मौक़े पर हम राष्ट्रपति याहिया खाँ से अनुरोध करते हैं कि जो तनाव पदा हो गया है उसे समाप्त करने के लिए अधिक से अधिक कारगर क़दम उठाएँ।"

श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा भारत के लिए प्रस्थान करने से पूर्व व्नुकोवो हवाई अड्डे पर पत्रकारों से बातचीत करते हुए कोसीगिन ने कहा : "किसी भी अत्याचारी को हमारा समर्थन कभी भी नहीं मिल सकता। हमारी सहानुभूति पाकिस्तान की जनवादी ताक़तों के साथ है।"

दोनों सरकारों के अध्यक्षों के बीच बातचीत में लियोनिद ब्रेजनेव और निकोलाई पोदगोर्नी भी उपस्थित थे जिससे वार्ता का महत्त्व बहुत बढ़ गया। इस व्यापक वार्ता में भारत-सोवियत द्विपक्षीय सम्बन्धों तथा समान रुचि की महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की चर्चा की गई।

और जब दिसम्बर 1971 में पाकिस्तानी जनरलों ने भारत के विरुद्ध ही युद्ध छेड़ दिया तब सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्र में और इसके बाहर भारत का साथ सुदृढ़ चट्टान की तरह दिया तथा युद्ध की ज्वाला को जल्द-से-जल्द शांत करने के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर प्रकार का प्रयास किया। स्वतंत्रता और जनवाद के ध्येय की विजय हुई और बंगलादेश का स्वतंत्र राज्य के रूप में अभ्युदय हुआ।

सभी राज्यों के बीच समानता और मैत्री की अपनी शान्तिप्रिय विदेश नीति का पालन करते हुए और जनगण के आत्मनिर्णय के सिद्धान्तों से पथप्रदर्शन ग्रहण करते हुए सोवियत नेताओं ने 25 जनवरी, 1972 को बंगलादेश के राष्ट्रपति अबू सईद चौधरी और प्रधानमन्त्री मुजीबुर रहमान को एक सन्देश भेजा, जिसमें घोषणा की कि सोवियत संघ "गणप्रजातंत्री बंगलादेश को प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य के रूप में मान्यता देता है" और इसके साथ उन्होंने 'राजनयिक सम्बन्ध' स्थापित करने और 'राजनयिक मिशनों' के आदान-प्रदान करने की अपनी तत्परता व्यक्त की।

युद्ध की ज्वालाएँ शांत हो चुकी थीं, किन्तु भारतीय उपमहाद्वीप की स्थिति अब भी अशान्त थी। पाकिस्तान ने बंगलादेश को मान्यता देने वाले लगभग तमाम देशों से अपने राजदूत वापिस बुला लिये थे। भुट्टो ने पश्चिमी पाकिस्तान और बंगलादेश के संयुक्तीकरण का राग अलापना शुरू कर दिया था। वह

भारतीय उपमहाद्वीप में विद्यमान वास्तविक स्थिति को मान्यता देने के लिए तैयार नहीं थे। अतः, वह चीन की ओर लपके, उस चीन की ओर जो जनगण में तनाव क़ायम रखने और शत्रुता के बीज बोने में दिलचस्पी लेता था और लेता है। पीकिंग के नेताओं ने पाकिस्तान को सहायता देने और भारत को धमकियाँ देने की अपनी बेढंगी चाल जारी रखी।

अपनी ओर से भारत इस उपमहाद्वीप में स्थिति सामान्य करने के लिए आवश्यक क़दम उठा रहा था। 14 फरवरी, 1972 को भारत सरकार ने सरकारी तौर पर सुबिमल दत्त जैसे अनुभवी राजनय को बंगलादेश में अपना हाईकमिश्नर नियुक्त करने की घोषणा की। सुबिमल दत्त ने बंगलादेश के राष्ट्रपति को 16 फ़रवरी, 1972 को अपने प्रत्यय-पत्र पेश किये। उसी दिन सरदार स्वर्ण सिंह ने 'तास' को दी भेंट-वार्ता में भारत-सोवियत संधि की प्रशंसा की और कहा कि इसने "यह स्पष्ट कर दिया है कि यह सार्वभौमिक शांति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा क़ायम रखने के लिए तथा विश्व में तनावों में कमी करने में प्रभावशाली उपादान है।" उन्होंने यह भी कहा कि "अधिकाँश विश्व ने अब यह मान लिया है कि सोवियत संघ और भारत ईमानदारी के साथ विश्व में शांति सुदृढ़ करने के ध्येय को अपना रहे हैं।"[1]

भारत और सोवियत संघ जब शांति की खोज में व्यस्त थे, उस समय अमरीका और चीन कठिनाइयों का पहाड़ खड़ा करने में जुटे हुए थे। राष्ट्रपति निक्सन ने प्रधानमंत्री चाऊ एन-लाई के निमन्त्रण पर 21 से 28 फ़रवरी, 1972 तक चीन की यात्रा की। चीन-अमरीकी विज्ञप्ति ने, जो 27 फ़रवरी को जारी की गई थी, भारत के मामलों में हस्तक्षेप करने के दोनों देशों के मंसूबों का पर्दाफ़ाश कर दिया। निक्सन ने घोषणा की कि संयुक्त राज्य अमरीका "भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध-विराम को जारी रखने और उनके द्वारा अपने भू-क्षेत्रों से और जम्मू और काश्मीर में युद्ध-विराम रेखा के अपनी-अपनी ओर फ़ौजों को वापिस बुलाना ठीक समझता है।" इसमें आगे यह भी कहा गया कि वह "पाकिस्तानी सरकार और जनता द्वारा अपनी स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता क़ायम रखने के उनके संघर्ष की तथा आत्म-निर्णय के अधिकार के लिए जम्मू और काश्मीर की जनता के संघर्ष का दृढ़तापूर्वक समर्थन करता है।" श्रीमती इन्दिरा गांधी ने तुरन्त ही चीन-अमरीकी विज्ञप्ति को भारत के आन्तरिक मामलों में खुल्लम-खुल्ला हस्तक्षेप कहा।

शेख मुजीबुर रहमान ने 1 से 3 मार्च, 1972 तक सोवियत संघ की राजकीय मैत्रीपूर्ण यात्रा की। वह जहाँ भी गये उनका भव्य स्वागत किया गया, जिसने यह

1. पैट्रिअट, 17 फ़रवरी, 1972

सिद्ध कर दिया कि सोवियत जनता व्यक्तिगत रूप से उनके प्रति और उनके देशवासियों के प्रति कितनी सद्भावना रखती है और कितने सम्मान की दृष्टि से उन्हें देखती है। शेख मुजीबुर रहमान के सम्मान में आयोजित अपराह्न भोज में कोसीगिन ने कहा : "यह देश सच्चे अर्थों में यह चाहता है कि हिन्दुस्तान प्रायद्वीप के देशों के बीच जो मौजूदा समस्याएँ हैं वे मित्रता और आपसी समझ की भावना में, शान्तिपूर्ण तरीक़ों से सुलझाई जायें।" पाकिस्तान को चीन तथा अमरीका के समर्थन का अप्रत्यक्ष रूप से ज़िक्र करते हुए उन्होंने कहा : "फिर भी पाकिस्तानी प्रतिक्रियावादियों को इन शक्तियों का समर्थन न तो युद्ध के मैदान में ही परिवर्तन ला सका और न ही सुरक्षा परिषद में, जहाँ सैनिक कार्रवाइयों को समाप्त करने और राजनीतिक समझौता खोजने के निर्णयों में बाधा डालने के प्रयास असफल सिद्ध हुए।"

शेख मुजीबुर रहमान की यात्रा के अन्त में जारी की गई संयुक्त घोषणा में यह भी कहा गया कि "उपमहाद्वीप में सच्चा राजनीतिक समाधान प्रत्यक्षरूप से सम्बन्धित राज्यों के बीच बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के और वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, उन राज्यों के जनगण के उचित अधिकारों और हितों के आधार पर परस्पर समझौता-वार्ता द्वारा ही संभव है।" सोवियत संघ और बंगला देश को विश्वास था कि "सच्चे राजनीतिक समाधान से उपमहाद्वीप की स्थिति सामान्य होने में मदद मिलेगी और यह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा सुनिश्चित बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान होगा।"

संसद के दोनों सदनों के 13 मार्च, 1972 को आयोजित संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित राष्ट्रपति गिरि के भाषण में पाकिस्तान से सम्बन्ध सामान्य करने की भारत की इच्छा को दोहराया गया। अपने भाषण में राष्ट्रपति ने कहा : "हम पाकिस्तान की जनता व सरकार की ओर भी मित्रता का हाथ बढ़ाते हैं। हमने बिना किसी पूर्व शर्त के अपने दोनों देशों के बीच सीधी वार्ता का प्रस्ताव करने में पहल की है। हमें आशा है कि पाकिस्तान उपमहाद्वीप की परिवर्तित स्थिति स्वीकार करेगा तथा सद्भावनापूर्वक हमारी पहल का उत्तर देगा। पाकिस्तान या अन्य किसी देश पर भारत के किसी भी प्रकार के क्षेत्रगत मंसूबे नहीं हैं।"

युद्ध के दौरान अमरीका के अमैत्रीपूर्ण रुख़ का ज़िक्र करते हुए राष्ट्रपति ने कहा : "बंगला देश के जनवादी अधिकारों व मौलिक स्वाधीनता के लिए वहाँ के लोगों के संघर्ष के प्रति संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार द्वारा सहानुभूति के अभाव से हमारे देश में गहरी निराशा हुई थी।"

'शक्ति सन्तुलन' के सिद्धान्त की कटु आलोचना करते हुए उन्होंने मत व्यक्त किया कि "इस क्षेत्र में शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त के व्यवहार द्वारा प्रभाव-क्षेत्रों को बनाये जाने का अथवा बड़े या छोटे किसी भी देश पर उनके अन्य देशों के

साथ सम्बन्धों के बारे में अधिकार जमाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। भारत न तो नेतृत्व चाहता है और न ही अधिकार जमाना। और न ही यह किसी देश का आधिपत्य सहन करेगा।"

भुट्टो की 16 से 18 मार्च, 1972 की सोवियत संघ यात्रा के दौरान सोवियत संघ ने उपमहाद्वीप में स्थिर स्थिति की आवश्यकता सम्बन्धी अपने पक्ष की पुनर्पुष्टि की। इस संदर्भ में सोवियत-पाकिस्तान संयुक्त विज्ञप्ति में राष्ट्रपति भुट्टो को "उपमहाद्वीप में शान्तिपूर्ण हालात क़ायम करने के लिए क़दम उठाने" के लिए अपनी तत्परता की घोषणा करनी पड़ी।

अलेक्सेई कोसीगिन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि इस क्षेत्र की घटनाओं के सम्बन्ध में सोवियत संघ की स्थिति सिद्धान्तनिष्ठता पर आधारित है। उन्होंने ज़ोर देकर कहा था : "यदि इतिहास की पुनरावृत्ति हुई तो हम वही रुख अख्तियार करेंगे क्योंकि हमें यक़ीन है कि केवल वही रास्ता ठीक है।"

श्रीमती इन्दिरा गांधी की 17 से 19 मार्च, 1972 की ढाका-यात्रा के फलस्वरूप 19 मार्च को भारत और बंगलादेश के बीच एक 25 वर्षीय मित्रता, सहयोग व शान्ति की सन्धि पर हस्ताक्षर किये गए।

लोकसभा में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 20 मार्च, 1972 के अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा कि यह सन्धि "न केवल भारत और बंगलादेश के बीच बल्कि उपमहाद्वीप में तथा इस समग्र क्षेत्र में स्थायी शान्ति व सहयोग का निर्देशन करेगी।"

इस अवधि में सोवियत नेताओं ने हमेशा इस क्षेत्र की स्थिति पर अपनी चिन्ता व्यक्त की। सोवियत ट्रेड यूनियनों की मास्को में आयोजित 15वीं कांग्रेस में भाषण करते हुए 20 मार्च, 1972 को उपमहाद्वीप की घटनाओं का ज़िक्र करते हुए लियोनिद ब्रेज़नेव ने कहा : "भारत के साथ मित्रता को सुदृढ़ बनाने के हमारे प्रयासों में हमें भारतीय जनता की असाधारण नेता श्रीमती इन्दिरा गांधी की अगुवाई में भारत सरकार की पूर्ण सद्भावना और पारस्परिक समर्थन प्राप्त होता है।" उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि "हमारी नीति में एशियाई देशों के साथ सम्बन्धों के प्रश्न ने हाल में अधिकाधिक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। और यह बात आसानी से समझ में आने लायक़ है। सोवियत संघ के राज्य-क्षेत्र का लगभग दो-तिहाई हिस्सा एशिया महाद्वीप में पड़ता है। एशिया के जनगण की राष्ट्रीय और सामाजिक मुक्ति-संघर्ष की सफलताओं और एशिया के राज्यों के आर्थिक विकास के फलस्वरूप विश्व राजनीति में एशिया की भूमिका तेज़ी से बढ़ रही है।"[1]

लियोनिद ब्रेज़नेव ने यह घोषणा भी की कि सोवियत जनता भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश के बीच स्थायी शान्ति एवं अच्छे पड़ोसियों जैसे सम्बन्धों

1. सोवियत दर्पण, खण्ड 7, अंक 18, 18 अप्रैल, 1972, पृ० 21

के विकास की भी सुसंगत समर्थक है क्योंकि इससे सम्पूर्ण एशिया में राजनीतिक वातावरण के सुधार में पर्याप्त योगदान होगा।

भारत सरकार ने पाकिस्तान से सम्बन्ध सामान्य करने का हर सम्भव प्रयास किया; किन्तु भुट्टो का उत्तर उलझा हुआ और अस्पष्ट था। सरदार स्वर्ण सिंह ने 31 मार्च, 1972 के अपने वक्तव्य में यह स्पष्ट किया कि पश्चिमी पाकिस्तान को अमरीका द्वारा हथियारों की सप्लाई दोबारा शुरू करना उपमहाद्वीप की स्थिति को जटिल बनाकर आग में घी का काम करेगा।

सरदार स्वर्ण सिंह ने 3 से 5 अप्रैल, 1972 में मास्को की यात्रा के दौरान सोवियत विदेशमंत्री से बातचीत की। वार्ताओं के अन्त में जारी संयुक्त वक्तव्य में भारत व सोवियत संघ दोनों ने यह विश्वास व्यक्त किया कि "आज की राज-नीतिक वास्तविकताओं को यथार्थ रूप में ध्यान में रखते हुए इस उपमहाद्वीप में स्थिति का सामान्यीकरण इस क्षेत्र के जनगण के जीवन्त हितों के सम्वर्धन और दृढ़ीकरण में सहायक बनेगा।" दोनों पक्षों का विश्वास था कि "इस उपमहाद्वीप को शान्ति, मित्रता और अच्छे पड़ोसीपन का क्षेत्र बनाने के लिए हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए।"

भारतीय उपमहाद्वीप में स्थिति सामान्य करने के लिए भारत द्वारा किये गए उपक्रमों व प्रयासों का सोवियत संघ ने उच्च मूल्यांकन किया। भारत-सोवियत सांस्कृतिक सोसायटी के पटना में 22 से 24 अप्रैल, 1972 तक आयोजित दसवें राष्ट्रीय सम्मेलन में बोलते हुए विदेशों के साथ मैत्री और सांस्कृतिक सम्बन्धों की सोवियत सोसायटियों की अध्यक्षा श्रीमती नीना पोपोवा ने घोषणा की :

"यह सर्वविदित है कि सोवियत संघ हिन्दुस्तान प्रायद्वीप के जनगण के बीच समस्याओं के शान्तिपूर्ण समाधान, उपमहाद्वीप में झगड़ों की नीति का अन्त करने तथा इसके स्थान पर उपमहाद्वीप के तमाम राज्यों के बीच शान्ति व सहयोग की नीति का समर्थक है।"

"हम भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश के बीच तनाव कम करने तथा पड़ोसी जैसा सहयोग और स्थायी शान्ति स्थापित करने के सुसंगत समर्थक हैं। यह सम्पूर्ण एशिया में राजनीतिक वातावरण सामान्य करने में यथेष्ठ योगदान होगा। हमें मालूम है कि भारत इस दिशा की ओर कार्यरत है।"

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति-निधि मण्डलों की मास्को में 20 से 28 जून, 1972 तक वार्ता के बाद जारी किये गए वक्तव्य में दोनों पक्षों ने यह कहा कि "1971 की घटनाओं के बाद दक्षिण एशिया में परिस्थिति तनावपूर्ण बनी हुई है। भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश के बीच तनाव बनाये रखने की योजनाओं पर आधारित शत्रुतापूर्ण बाहरी शक्तियाँ इस परिस्थिति से फ़ायदा उठाने का प्रयास कर रही हैं।"

"इस क्षेत्र के देशों के बीच स्थायी शान्ति, अच्छे पड़ोसी जैसे सम्बन्ध तथा सहयोग की स्थापना उनके जीवन्त हितों से मेल खाती है तथा दुनिया भर की शान्तिप्रिय शक्तियाँ इसका अनुमोदन करेंगी।"

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों ने "भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी तथा पाकिस्तान के राष्ट्रपति जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो के बीच प्रारम्भ वार्ताओं पर सन्तोष" व्यक्त किया और विश्वास प्रकट किया कि "भारत और पाकिस्तान के बीच मित्रता की स्थापना दक्षिण एशिया के देशों के बीच स्थायी शान्ति और अच्छे पड़ोसी जैसे सम्बन्ध सुनिश्चित बनाने में मूल्यवान योगदान होगी।"[1]

और अन्ततः, भारत की सरकार और पाकिस्तान की सरकार के बीच द्विपक्षीय सम्बन्धों के बारे में ऐतिहासिक शिमला समझौते पर 3 जुलाई, 1972 को हस्ताक्षर हुए जिसमें दोनों सरकारों ने यह तय किया कि "दोनों देश उन संघर्षों व झगड़ों का अन्त करेंगे जिन्होंने अब तक सम्बन्धों को बिगाड़ा हुआ था तथा वे उपमहाद्वीप में मित्रतापूर्ण व सुखद सम्बन्धों के विकास व स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए कार्य करेंगे जिससे दोनों देश अपने संसाधनों व शक्तियों को अपने-अपने जनगणों के कल्याण के सम्वर्धन के महत्वपूर्ण कार्य में जुट सकें।"

सोवियत समाचारपत्रों ने शिमला शिखर सम्मेलन की सफलता का स्वागत किया। 'इज़वेस्तिया' के 5 जुलाई, 1972 के अंक में प्रकाशित एक लेख में कहा गया :

"शिमला समझौते पर हस्ताक्षर होना भारतीय व पाकिस्तानी नेताओं की उस सद्भावना का कृत्य और उस इच्छा की अभिव्यक्ति है जिससे वे अपने देशों के बीच एक नया अध्याय प्रारम्भ कर सके। अनेक देशों के शान्तिप्रेमियों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और इसका स्वागत किया है और इसे भारत और पाकिस्तान के बीच शान्ति और मित्रता सुनिश्चित करने की ओर एक अग्रगामी वास्तविक क़दम घोषित किया है।

"सोवियत संघ दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप का हमेशा सच्चा दोस्त रहा है और है। सोवियत जनता ने शिमला में हुई बातचीतों का बहुत सन्तोष के साथ स्वागत किया, शान्ति व प्रगति की शक्तियों के लिए इनके परिणामों का विजय के रूप में स्वागत किया। यह विजय राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति की विजय है।"

भारतीय उपमहाद्वीप में स्थिति के सामान्यीकरण के बारे में सोवियत रुख को आन्द्रेई ग्रोमिको ने 5 अक्तूबर, 1972 को न्यूयार्क में अनेक प्रश्नों पर सरदार

1. सोवियत दर्पण, खण्ड 7, अंक 32, 11 जुलाई, 1972

स्वर्णसिंह से विचार-विमर्श करते समय पुनः व्यक्त किया।

लियोनिद ब्रेज़नेव ने सोवियत संघ के गठन की पचासवीं जयन्ती के अवसर पर मास्को में 21 दिसम्बर, 1972 को आयोजित संयुक्त समारोह-सभा में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के सुधार में भारत के योगदान का उच्च मूल्यांकन किया। उन्होंने कहा :

"सोवियत संघ और इस धरती के एक सबसे बड़े शान्तिप्रेमी देश भारत के बीच मित्रता का सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर दृढ़ सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। सोवियत संघ और भारत अब तक फलप्रद सहयोग के पर्याप्त अनुभव अर्जित कर चुके हैं।"

भारतीय उपमहाद्वीप की स्थिति और शिमला समझौते का अप्रत्यक्ष रूप से ज़िक्र करते हुए उन्होंने आगे कहा : "हम यह समझते हैं कि बंगलादेश और पाकिस्तान के साथ अच्छे सम्बन्ध बढ़ाने की अच्छी सम्भावनाएँ मौजूद हैं।"

28 अगस्त, 1973 को जब भारत और पाकिस्तान ने 1971 के सैनिक संघर्ष के फलस्वरूप उत्पन्न अत्यन्त जटिल समस्या से सम्बन्धित समझौते पर, शिमला समझौते की भावना के अनुसार, हस्ताक्षर किये, जो युद्धबंदियों और घुसपैठियों की, पाकिस्तान से बंगलादेश-वासियों की, बंगलादेश से पाकिस्तानियों की, अपने-अपने देशों में वापसी से सम्बन्धित था, तो 'प्राव्दा' ने लिखा : "दिल्ली समझौता एशियाई राज्यों के लिए प्रमुख समस्याओं के समाधान करने का उदाहरण है।"

लियोनिद ब्रेज़नेव ने 15 अगस्त, 1973 को अल्मा अता में आयोजित कज़ाखस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति और कज़ाख जनतन्त्र की सर्वोच्च सोवियत की संयुक्त समारोह-सभा में भाषण करते हुए भारत और पाकिस्तान के बीच सम्पन्न हुए दिल्ली समझौते का स्वागत किया।

भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (1972-73) में उपमहाद्वीप के सम्बन्ध में सोवियत संघ के सकारात्मक रुख़ का उच्च मूल्यांकन किया गया और कहा गया कि मास्को में शिमला समझौते का हार्दिक स्वागत किया गया है तथा मास्को ने भारत की इस आस्था का अनुमोदन किया है कि भारतीय उपमहाद्वीप से सम्बन्धित समस्याएँ द्विपक्षीय रूप से और किसी भी प्रकार के बाह्य हस्तक्षेप के बिना सम्बन्धित राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण तरीक़ों के माध्यम से सुलझाई जा सकती हैं और सुलझाई जानी चाहिएँ। रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि शिमला समझौते के कार्यान्वयन में भारत के सुसंगत प्रयासों की सोवियत संघ में प्रशंसा की गई थी। यह आम चिन्ताओं की समस्याओं पर दोनों देशों के बीच गहन पारस्परिक समझ का प्रतिबिम्ब था तथा "इस वजह से संयुक्तराष्ट्र और

अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में सहयोग में वृद्धि होती गई।"[1]

कज़ाख़ जनतंत्र को जनगण की मैत्री का आर्डर प्रदान करने के अवसर पर लियोनिद ब्रेज़नेव ने एशिया की स्थिति में सुधार लाने के लिए महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का ज़िक्र किया। उन्होंने कहा : "भारतीय उपमहाद्वीप के राज्यों के बीच सम्बन्ध सामान्य करने की स्थितियाँ पैदा हो रही हैं।"

ताशकंद में 24 सितम्बर, 1973 को भाषण करते हुए लियोनिद ब्रेज़नेव ने भारत की शान्ति और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति का पुनः उच्च मूल्यांकन किया और कहा : "निःसन्देह, एशिया की नियति को गढ़ने में भारत का महत्त्वपूर्ण स्थान है... भारत ने विश्व राजनीति में अनेक मूल्यवान योगदान किये हैं और हमें विश्वास है कि उसकी यह भूमिका बढ़ती जायेगी।"

26 अक्तूबर, 1973 को मास्को में शान्ति शक्तियों की विश्व कांग्रेस में भाषण करते हुए लियोनिद ब्रेज़नेव ने एक बार पुनः भारत की शान्तिप्रिय विदेश नीति का ज़िक्र किया : "भारत गणराज्य आन्तरिक समस्याओं के जनवादी समाधान के साथ-साथ शान्ति की सुसंगत नीति की मिसाल पेश करता है।"

दक्षिण एशिया में सामान्य सम्बन्धों के लिए प्रयासों पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने इसी भाषण में कहा : "शान्ति के लिए कार्य करने वाली जनसंस्थाएँ दक्षिण एशिया में सामान्य सम्बन्धों की स्थापना का सच्चे दिल से स्वागत करती हैं। ऐसा कहते समय मैं भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश जैसे राज्यों के बीच सम्बन्धों के बारे में सोच रहा हूँ।"

ब्रेज़नेव ने अपनी भारत-यात्रा के दौरान अत्यधिक प्रौढ़ और प्रांजल ढंग से वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा विश्व में उभरती शक्तियों की पंक्तिबद्धता और संघर्षों को विशेष रूप में भारतीय संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में 29 नवम्बर, 1973 को प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने एशिया की भूमिका पर पुनः प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि "महान एशियाई महाद्वीप अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हुए सकारात्मक परिवर्तनों से अलग नहीं रहा है। एशिया में भी तनाव-शैथिल्य की एवं अन्तर्राजीय सम्बन्धों के सामान्यीकरण की प्रक्रिया गतिशील होने लगी है और उसकी गति तेज़ होती जा रही है।"

सकारात्मक प्रक्रिया के अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्वों में उन्होंने 'दक्षिण एशिया की परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण सुधार' का 'एशियाई राष्ट्रों के परिवार के अधिकारी सदस्य के रूप में स्वतंत्र राज्य बंगलादेश के उद्भव' का और 'एशियाई राज्यों में सहयोग विस्तरण' का ज़िक्र किया।

उन्होंने यह भी कहा कि "दक्षिण एशिया की परिस्थिति सामान्य बनाने में

1. रिपोर्ट 1972-73, विदेश मंत्रालय, पृ० 43

भारत जो महान योगदान कर रहा है वह सर्वविदित है। भारत के सक्रिय रूप से शामिल होने के कारण महत्त्वपूर्ण क़रार सम्पन्न हुए हैं, जिनसे इस क्षेत्र के सभी राज्यों के बीच अच्छे पड़ोसी जैसे सम्बन्धों की नीव पड़ी है। इस उपमहाद्वीप में आज पहली बार अच्छे पड़ोसीपन और परस्पर लाभदायक सहयोग की दिशा में निर्णायक मोड़ लाने वाली स्थितियाँ पैदा हो रही हैं। भारत, बंगलादेश और पाकिस्तान के सभी सच्चे दोस्तों और सभी सच्चे शान्तिप्रिय राज्यों को इस प्रकार के विकास से प्रसन्नता ही हो सकती है।"

लियोनिद ब्रेजनेव की यात्रा की समाप्ति पर जारी भारत-सोवियत संयुक्त घोषणा में उपमहाद्वीप की स्थिति के सम्बन्ध में क्या कहा गया? प्रथमत:, इसमें कहा गया कि "भारतीय उपमहाद्वीप की स्थिति के सामान्यीकरण के मार्ग में बाधक अनेक समस्याओं के हल के लिए सहमति होना इस क्षेत्र में हाल के संकट के परिणामों के पूर्ण निराकरण के विषय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है।"

घोषणा में पाकिस्तान द्वारा बंगलादेश को मान्यता दिये जाने का विश्वास व्यक्त किया गया क्योंकि ऐसा करना "उपमहाद्वीप में राजनीतिक समस्या के शीघ्र समाधान तथा दृढ़ स्थिरता की प्रगति के हित में होगा।" दोनों पक्षों ने आशा व्यक्त की कि "पाकिस्तान निकट भविष्य में ऐसा क़दम उठाएगा।"

दोनों देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ में गणप्रजातंत्री बंगलादेश को प्रवेश दिये जाने की माँग की।

दोनों पक्षों का यह विश्वास था कि "जो प्रमुख विवादग्रस्त समस्याएँ भारतीय उपमहाद्वीप में अब भी मौजूद हैं, उन्हें सम्बन्धित देशों द्वारा, किसी भी प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप के बिना, आपसी बातचीत के जरिए सुलझाया जा सकता है और अवश्य सुलझाया जाना चाहिए।" जुलाई 1972 के शिमला-समझौते का अनुमोदन करते हुए उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया कि इस समझौते के अनुसार "इन समस्याओं के सुलझाए जाने से इस क्षेत्र के सभी देशों के जनगण के हितों को लाभ पहुँचेगा। भारत और सोवियत संघ का विश्वास है कि 17 अप्रैल, 1973 की भारत-बंगलादेश संयुक्त घोषणा तथा 28 अगस्त, 1973 का भारत-पाकिस्तान समझौता उपमहाद्वीप में स्थिति के पूर्ण सामान्यीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण क़दम हैं।"

भारत और सोवियत संघ का रचनात्मक रवैया, जैसा कि संयुक्त घोषणा में अभिलिखित है, इस उपमहाद्वीप की स्थिति के सामान्यीकरण के सम्बन्ध में दोनों राज्यों की सिद्धान्तनिष्ठ स्थिति का स्वाभाविक परिणाम है तथा इस क्षेत्र के देशों के बीच अच्छे पड़ोसी जैसे सम्बन्ध स्थापित करने और शान्ति सुनिश्चित करने के दोनों देशों के संयुक्त संघर्ष का फल है। अत:, इस क्षेत्र के जनगण एकता और सहयोग के सूत्र में बँध कर, उपनिवेशवाद के अवशेषों को समाप्त कर सकते

हैं और साम्राज्यवादियों के तथा चीन के माओवादी नेताओं के, जो इस क्षेत्र के जनगण को एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध के लिए उकसाते रहते हैं और हर प्रकार की सहायता देते हैं और यह भी चाहते हैं कि यह जनगण निर्धनता और अज्ञान में डूबे रहें, कुचक्रों का ध्वंस कर सकते हैं।

सोवियत संघ ने दक्षिण एशिया के देशों के बीच सम्बन्धों के सामान्यीकरण में अपनी दिलचस्पी हमेशा दिखाई है। 'प्राव्दा' के 14 दिसम्बर, 1973 के अंक में प्रकाशित एक लेख में कहा गया : "दक्षिण एशिया में, जहाँ नए शान्तिप्रिय और स्वाधीन राज्य—बंगलादेश, गणप्रजातंत्री बंगलादेश का अभ्युदय हुआ है, स्थिति के सामान्य होने की प्रक्रिया सफलतापूर्वक विकसित हो रही है।"

सम्बन्ध सामान्य करने की इस प्रक्रिया की शृंखला की नई कड़ी थी—फ़रवरी 1974 में पाकिस्तान और बंगलादेश के बीच राजनयिक सम्बन्ध स्थापित होना। इससे दक्षिण एशिया के तमाम देशों के हित साधन में नया मोड़ आया। विश्व के प्रगतिशील वर्गों में इस घटना का स्वागत किया गया। 'तास' के एक समीक्षक ने टिप्पणी करते हुए लिखा : "पाकिस्तान द्वारा गणप्रजातंत्री बंगलादेश को राजनयिक मान्यता देने का समाचार न केवल दक्षिण एशिया को बल्कि समग्र विश्व को गहरे सन्तोष के साथ ज्ञात हुआ। यह घटना दिसम्बर 1971 के सैन्य संघर्ष के फलस्वरूप उपमहाद्वीप के देशों के सामने उभरे विवादों के अन्तिम समझौते के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए महत्त्वपूर्ण क़दम है।"

पाकिस्तान द्वारा बंगलादेश की राजकीय मान्यता पर 'नोवोस्ती प्रेस एजेंसी' के एक विश्लेषक ए० लव्रेन्त्येव ने टिप्पणी करते हुए भारत की शान्तिपूर्ण विदेश-नीति की बहुत प्रशंसा की और कहा : "बंगलादेश को राजनयिक मान्यता प्रदान करने का निर्णय पाकिस्तान के लिए आसान काम नहीं था, तथापि संवर्धनशील अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य की पृष्ठभूमि में इसका आधार तैयार किया जा रहा था। यह निर्णय भारतीय सरकार की वजह से लिया गया, जिसने उपमहाद्वीप में स्थिति के स्थिरीकरण के लिए एक के बाद दूसरी पहलक़दमी की। भारत स्थितियों के तीन-पक्षीय समन्वयन में जोड़ने वाली कड़ी सिद्ध हुआ है।"[1]

भारत-सोवियत सांस्कृतिक सोसायटी की कर्णाटक शाखा के हुबली में आयोजित तीसरे सम्मेलन में 10 मार्च, 1974 को भारत में सोवियत संघ के राजदूत वी० एफ़० मौल्तसेव ने भाषण देते हुए दोनों देशों के बीच विदेश नीति के क्षेत्र में सहयोग पर सन्तोष व्यक्त किया और कहा कि "...भारतीय उपमहाद्वीप की स्थिति के सामान्यीकरण पर..." इस सहयोग का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

भारत पाकिस्तान और बंगलादेश के विदेश मंत्रियों की बातचीत के फल-

1. सोवियत रिव्यू, अंक 12, 18 मार्च, 1974

स्वरूप 9 अप्रैल, 1974 को नई दिल्ली में हस्ताक्षरित त्रिपक्षीय समझौते का सोवियत संघ में स्वागत किया गया। सोवियत समाचार-पत्र में प्रकाशित एक लेख में कहा गया : "उपमहाद्वीप की घटनाएँ सोवियत संघ के लिए, जिसकी सीमाएँ इस क्षेत्र के अति निकट हैं, विशेष दिलचस्पी की चीज़ हैं। सोवियत सरकार ने यह बात बार-बार कही है कि वह भारत, बंगलादेश और पाकिस्तान के बीच स्थायी शान्ति हासिल करने के उद्देश्य से की जाने वाली सभी कार्रवाइयों को अपना समर्थन प्रदान करेगी। उपमहाद्वीप के राजनीतिक वातावरण का सामान्यीकरण एशिया तथा समस्त विश्व में तनाव-शैथिल्य के ध्येय में बड़ा योगदान होगा।"

बंगलादेश के विदेश मंत्री डॉ० कमाल हुसैन की सोवियत संघ की 17 से 22 मई, 1974 की राजकीय यात्रा पर जारी की गई सोवियत-बंगलादेश विज्ञप्ति में सोवियत पक्ष ने उपमहाद्वीप में स्थिति सामान्य बनाने में "बंगलादेश व भारत की सरकारों द्वारा की गई पहलक़दमी पर तथा बंगला देश और पाकिस्तान की पारस्परिक मान्यता पर बहुत सन्तोष" व्यक्त किया।

अफ़ग़ानिस्तान गणतंत्र के राज्याध्यक्ष और प्रधानमंत्री मोहम्मद दाऊद की सोवियत संघ की 4 से 8 जून, 1974 की राजकीय मैत्रीपूर्ण यात्रा के अन्त में जारी किये गए सोवियत-अफ़ग़ान संयुक्त वक्तव्य में सोवियत संघ और अफ़ग़ानिस्तान ने "शान्ति के सुदृढ़ीकरण की ओर लक्षित दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप के देशों के प्रयासों के लिए अपने समर्थन" की घोषणा की। उन्होंने कहा कि "हमें गहरा विश्वास है कि दक्षिण एशिया में मौजूदा विवादग्रस्त मसले किसी भी बाहरी हस्तक्षेप के बिना सम्बन्धित देशों के बीच बातचीतों द्वारा सुलझाये जा सकते हैं और अवश्य सुलझाने चाहिएँ।

"पक्षों ने अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया कि 9 अप्रैल, 1974 को भारत, बंगलादेश और पाकिस्तान के बीच हस्ताक्षरित त्रिपक्षीय समझौता उपमहाद्वीप में शान्ति और स्थायित्व के दृढ़ीकरण के लिए तथा क्षेत्र के देशों के बीच शान्तिपूर्ण सम्बन्धों और सहयोग के सकारात्मक विकास के लिए अनुकूल स्थिति पैदा करने के लिए अच्छा आधार है।"

भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री सरदार स्वर्ण सिंह की सोवियत संघ की 8 से 10 सितम्बर, 1974 तक की राजकीय यात्रा के अन्त में जारी किये गए वक्तव्य में सोवियत पक्ष ने इस क्षेत्र में सम्बन्धों के सामान्यीकरण के प्रसार में भारत के सुसंगत प्रयासों का 'उच्च मूल्यांकन' किया। इस बात पर बल दिया गया कि भारत, बंगलादेश और पाकिस्तान के बीच 9 अप्रैल, 1974 को त्रिपक्षीय समझौते का सम्पन्न होना मेल-मिलाप की दिशा में प्रमुख क़दम है। दोनों पक्षों ने इस मामले में हासिल प्रगति का स्वागत किया और इसकी पुनर्पुष्टि की कि शिमला

समझौते के प्रावधानों के अनुसार द्विपक्षीय वार्ता द्वारा विवादास्पद प्रश्नों का शान्तिपूर्ण ढंग से निबटारा किया जाना चाहिए। सोवियत संघ के विदेश मंत्री आंद्रेई ग्रोमिको ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के 29वें पूर्णाधिवेशन में 24 सितम्बर, 1974 को यह घोषणा की कि "राजनीतिक चिन्तन एशिया में भी शान्ति एवं स्थायित्व को सुनिश्चित बनाने के तरीक़ों की तलाश की ओर अधिकाधिक अभिमुख हो रहा है। क्या दक्षिण एशिया उपमहाद्वीप में सम्बन्धों के सामान्यीकरण के भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश के प्रयत्न से...इसका प्रमाण नहीं मिलता है?"

पाकिस्तान के प्रधान मंत्री जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो के सम्मान में 24 अक्तूबर, 1974 को आयोजित रात्रि-भोज में भाषण करते हुए दक्षिण एशिया की स्थिति के सम्बन्ध में अलेक्सेई कोसीगिन ने स्पष्ट शब्दों में कहा :

"हमारे पाकिस्तानी अतिथि यह अवश्य जानते हैं कि सोवियत सरकार, हमारे देश की व्यापक जनता दक्षिण एशिया की घटनाओं को बहुत सावधानी और मैत्रीपूर्ण दिलचस्पी से देखती है। उस क्षेत्र की स्थिति को सामान्य करने में हम भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश के प्रयासों को अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम करने के शान्तिपूर्ण राज्यों के तमाम संघर्ष का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। अभी हाल में दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप में राजनीतिक वातावरण सैन्य संघर्ष के परिणामों से क्षुब्ध था। यह अनसुलझी राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य समस्याओं द्वारा जटिल बना दिया गया था। इनमें से अनेक समस्याएँ अब सुलझा ली गई हैं और अन्य पर काम किया जा रहा है।

"भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश के जनगण के प्रति मैत्रीपूर्ण भावनाएँ रखते हुए हमने जुलाई 1974 के शिमला समझौते तथा अगस्त 1973 में दिल्ली में हुए समझौते का और इस वर्ष अप्रैल में सम्पन्न भारत, बंगलादेश और पाकिस्तान के बीच त्रिपक्षीय समझौते का उपमहाद्वीप में स्थिति के सामान्यीकरण के लिए महत्त्वपूर्ण क़दमों का स्वागत किया था। इन और अन्य समझौते के ढाँचों के अन्तर्गत राष्ट्रीय सीमाओं के पीछे पाकिस्तानी और भारतीय दस्ते पीछे हटा लिये गए हैं। पाकिस्तानी युद्धबन्दी अपने घरों को लौट गये हैं, बंगालियों को पाकिस्तान से, बंगलादेश से अनेक पाकिस्तानियों को वापिस भेज दिया गया है। पाकिस्तान और बंगलादेश ने एक-दूसरे को मान्यता दे दी है तथा भारतीय और पाकिस्तानी नागरिकों द्वारा यात्राओं के आदान-प्रदान को दोबारा शुरू करने और संचार सम्बन्ध पुनः क़ायम करने के सम्बन्ध में समझौता हो चुका है।"

उन्होंने आगे कहा :

"यह और अन्य क़दम उपर्युक्त पक्षों—तीनों देशों की सरकारों—के संयुक्त प्रयासों के कारण सम्भव हुआ। उन्होंने उचित दृष्टिकोण अपनाया, सद्भावना

और यथार्थ राजनीतिक समझ दिखाई। उपमहाद्वीप की जटिल समस्याओं के पारस्परिक रूप से स्वीकार्य समाधानों की खोज में हम पाकिस्तान के प्रधान मंत्री श्री भुट्टो के प्रयासों का भी मूल्यांकन करते हैं। हम सच्चे दिल से यह चाहते हैं कि पाकिस्तान, भारत और बंगलादेश की सरकारों तथा उनके प्रधानमन्त्रियों—श्री ज़ुल्फ़िक़ार अली भुट्टो, श्रीमती इन्दिरा गांधी व शेख मुजीबुर रहमान को सम्बन्धों के पूर्ण सामान्यीकरण में सफलता मिले, यह प्रक्रिया एक ओर तो पाकिस्तान तथा दूसरी ओर भारत और बंगलादेश के बीच शुरू हुई है..."

भारतीय उपमहाद्वीप की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए आन्द्रेई ग्रोमिको ने महान् अक्तूबर क्रान्ति की 57वीं जयन्ती के अवसर पर ६ नवम्बर, 1974 को मास्को में आयोजित समारोह-सभा में भाषण करते हुए कहा : "भारतीय उपमहाद्वीप में परिस्थिति का लगातार सामान्यीकरण इस तथ्य को विश्वसनीय रूप से उजागर करता है कि सबसे जटिल समस्याओं को भी आपसी बातचीत के ज़रिए हल किया जा सकता है। सोवियत संघ ने इस दिशा में बहुत कुछ किया है। हमें इस वास्तविकता से सन्तोष है कि हमारे देश के प्रयासों की सीधे-सीधे सम्बद्ध राज्यों ने, जैसे भारत ने, बेहद प्रशंसा की है तथा इस देश के साथ अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर हमारा सहयोग विश्व शान्ति के ध्येय के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है, साथ ही पाकिस्तान और बंगलादेश के लिए भी जिनके साथ हमारे अच्छे सम्बन्ध हैं।"

सोवियत संघ न केवल पड़ोसियों के बीच शान्ति में दिलचस्पी लेता है बल्कि इसने हर सम्भव तरीक़े से भारत, बंगलादेश और पाकिस्तान के बीच सम्बन्धों का सामान्यीकरण और सहयोग सुनिश्चित करने में सकारात्मक सहायता की है।

3

प्रगति और समृद्धि की ओर संयुक्त प्रयास

पड़ोसियों के बीच शान्ति तथा महाद्वीप के तमाम देशों के बीच शान्ति का क़दम जनगण की आवश्यकताओं तथा उनके औपनिवेशिक अतीत के अवशेषों को समाप्त करने के प्रयासों का परिणाम है। एशिया में इसका अत्यधिक महत्त्व और आवश्यकता है क्योंकि यह महाद्वीप अपने गौरवपूर्ण अतीत के स्थान पर साम्राज्यवादी शोषण और कुचक्रों द्वारा निर्धनता और पिछड़ेपन में धकेल दिया गया है। साम्राज्यवाद यहाँ अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए सक्रिय रूप से अभी तक राष्ट्रों को विभाजित रखने की नीति अमल में ला रहा है। इसने जो सैनिक गुट तैयार किये हैं वे इस क्षेत्र के तमाम देशों की स्वतंत्रता के लिए स्थायी ख़तरा बने हुए हैं।

इस संदर्भ में एशिया के पुनर्जागरण का संघर्ष आज भी जारी है। भारत की स्वतंत्रता के बहुत पहले ही राष्ट्रीय नेताओं ने यह अनुभव किया था कि ब्रिटिश जुए से आजादी के लिए देश का संघर्ष तथा इसके भविष्य का संयोजन करना एशिया के राष्ट्रों के बीच व्यापक सहयोग से और एकता से ही सम्भव हो सकेगा।

एशियाई देशों के बीच सम्बन्धों को सोवियत विदेश-नीति में विशेष स्थान दिया गया है। यह केवल इसलिए नहीं कि सोवियत संघ का दो-तिहाई हिस्सा इस महाद्वीप में स्थित है, बल्कि इसलिए कि विश्व राजनीति में एशिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ गई है।

यदि हम भारतीय इतिहास का गहन अध्ययन करें तो हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि एशियाई महाद्वीप के राष्ट्रों के बीच एकता की भावना इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही विद्यमान थी। उदाहरणार्थ, हमें ज्ञात है कि गांधी जी ने 1920 में पश्चिमी औपनिवेशिक आधिपत्य से मुक्ति के संघर्ष में एशियाई देशों की बढ़ती हुई एकजुटता का आह्वान किया था। गया में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए 1922 में चित्तरंजन दास ने इस देश के एक एशियाई संघ में शामिल होने का अनुरोध किया था। एशियाई संघ का विचार 1926 और 1928 में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में भी फिर उभर कर आया था। और अन्ततः, हम पाते हैं कि 1940

में जवाहरलाल नेहरू ने भविष्य के विश्व संघ के अंग के रूप में एक एशियाई संघ के गठन का प्रस्ताव रखा था।[1]

एशियाई महाद्वीप के देशों के इतिहास में मार्च-अप्रैल 1947 में आयोजित एशियाई सम्बन्ध सम्मेलन ऐतिहासिक महत्त्व की घटना थी। इस सम्मेलन में नेहरूजी ने एशिया की ओर महान शक्तियों और जो रूपायित हो रही थीं, उन चीज़ों में आस्था का आह्वान किया था तथा एशिया के "अन्य महाद्वीपों के साथ अपना अधिकारपूर्ण स्थान ग्रहण करने"[2] की चर्चा की थी। इस सम्मेलन में एशियाई एकता की आवश्यकता पर बल दिया गया था।

नेहरूजी ने इस अवधारणा का बहुत दृढ़ता से विरोध किया कि अनेक एशियाई देशों की एकजुटता सैनिक रूप से तीसरी शक्ति बन जाए।

"अगर कुछ एशियाई देश आ जुटें और अपने को फ़ौजी अर्थ में एक तीसरी शक्ति या तीसरी सत्ता कहें तो यह निरर्थक होगा... उसे तीसरी शक्ति या तीसरा गुट कहने के बजाय, उसे एक तीसरा क्षेत्र कहा जा सकता है, एक ऐसा क्षेत्र जो··· युद्ध नहीं चाहता, सकारात्मक रीति से शान्ति के लिए काम करता है और सहयोग में विश्वास रखता है।"[3]

वस्तुतः, यह फ़ौजी संधियों के ज़रिये डलेसीय 'सामूहिक सुरक्षा' के स्थान पर सामूहिक शान्ति की अवधारणा थी। नेहरूजी को सामूहिक सुरक्षा के मुखौटे में सामूहिक युद्ध की तैयारी की 'तत्परता' के विषय में गहरे संदेह थे। वह पंचशील या शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के पाँच सिद्धान्तों की अवधारणा के समर्थक थे, जिसमें सुरक्षा सैनिक संधियों के स्थान पर सहयोग के ज़रिए सुनिश्चित की जा सकती थी। 1955 में आयोजित बांदुंग सम्मेलन एशियाई एकजुटता का अन्य प्रबल उदाहरण था।

एशियाई स्थायित्व और सामूहिक सुरक्षा को अमल में लाने का मार्ग असंदिग्ध रूप से कठिन और जटिल है, लेकिन सोवियत संघ और अमरीका तथा अन्य पश्चिमी देशों के बीच शीत युद्ध और झगड़ों के स्थान पर सहयोग का वातावरण क़ायम करने से, तनाव-शैथिल्य की वर्तमान प्रक्रिया की वजह से तथा इस महाद्वीप के व्यापक जनगण द्वारा अपना पिछड़ापन दूर करने और अपने लिए एक सुखद भविष्य का निर्माण करने के प्रयासों से इसने बहुत आवश्यक रूप धारण कर लिया है।

एशिया में सामूहिक सुरक्षा का क्या आधार हो सकता है? एशियाई राज्यों

1. बिमल प्रसाद, 'ओरिजिन्स ऑफ़ इंडियन फ़ोरेन पॉलिसी', कलकत्ता, 1960, पृ० 72-77
2. जवाहरलाल नेहरूज़ स्पीचेज़ 1947-49, नई दिल्ली, 1949, पृ० 299
3. पूर्वोक्त।

की एकता का मात्र आधार है : अपने बीच सम्बन्धों में शक्ति के प्रयोग का परित्याग, प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता के प्रति सम्मान, एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप तथा पूर्ण समानता व पारस्परिक लाभ के आधार पर आर्थिक तथा अन्य क्षेत्रों में सहयोग। अतः, यह एशियाई एकजुटता और शान्ति के ध्येय को प्रगाढ़ रूप से सुदृढ़ कर सकता है तथा एशियाई देशों के बीच संघर्ष और संदेह के बीज बोने वाली शक्तियों को कमज़ोर कर सकता है।

यह स्पष्ट है कि सोवियत संघ, जिसे द्वितीय विश्व युद्ध में जान-माल की बहुत हानि हुई थी तथा जिसे युद्ध का प्रमुख भार अपने ही कंधों पर ढोना पड़ा था, समग्र भूमंडल में स्थायी शान्ति स्थापित करने में दिलचस्पी लेता है। इसकी जनता युद्ध के भयावह परिणामों से, तथा ये परिणाम किस प्रकार शान्तिपूर्ण संरचना और सृजनात्मक अन्वेषणों में हस्तक्षेप करते हैं, इससे भली भाँति परिचित है।

सोवियत संघ और जर्मन संघ गणराज्य तथा सोवियत संघ और अमरीका के बीच समझ के तथा वर्तमान यूरोपीय सीमाओं की मान्यता के फलस्वरूप यूरोपीय सुरक्षा के विचार का महत्त्व बढ़ रहा है। यूरोप में तनाव-शैथिल्य का प्रसार हो रहा है तथा प्रथम अखिल यूरोपीय सुरक्षा व सहयोग सम्मेलन का पहला चरण समाप्त हो चुका है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि सामूहिक सुरक्षा के विचार का एशिया में भी प्रसार हो और यह ज्वलन्त प्रश्न बन जाये।

एशिया में सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा मास्को में आयोजित कम्युनिस्ट और मेहनतकश पार्टियों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में 7 जून, 1969 को लियोनिद ब्रेज़नेव के भाषण में पहली बार सामने आई थी। यहाँ यह स्मरण दिलाना होगा कि 1967 में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस क्षेत्र के देशों की स्वतन्त्रता, प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता की गारंटी से युक्त एशियाई राष्ट्रों के बीच एक कन्वेन्शन या आम समझौते का प्रस्ताव रखा था। लियोनिद ब्रेज़नेव ने एशिया में सामूहिक सुरक्षा का विचार निम्न शब्दों में इस प्रकार सामने रखा था :

"वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की ज्वलन्त समस्याएँ, किन्हीं दीर्घकालिक कर्त्तव्यों को हमारी दृष्टि से ओझल नहीं करतीं, यथा, भूमंडल के उन भागों में जहाँ एक नये विश्व युद्ध और सशस्त्र संघर्षों का खतरा केन्द्रित है, वहाँ सामूहिक सुरक्षा प्रणाली स्थापित करना। ऐसी प्रणाली मौजूदा फ़ौजी राजनीतिक गुटबंदियों की जगह श्रेष्ठ विकल्प होगा...हमारा मत है कि घटना-क्रम भी एशिया में सामूहिक सुरक्षा प्रणाली स्थापित करने के प्रश्न को कार्य सूची में रख रहा है।"

लियोनिद ब्रेज़नेव ने अपने भाषण में सुरक्षा के लिए फ़ौजी रास्ता अपनाने का विरोध किया और ऐसी प्रणाली के सृजन का आह्वान किया जो "मौजूदा

फ़ौजी गुटबंदियों का श्रेष्ठ विकल्प[1] होगा।

इस प्रस्ताव के प्रति यूरोप में भी बहुत दिलचस्पी पैदा हुई। फ्रांस के साप्ताहिक पत्र 'लेमाँद' ने 16 जुलाई, 1969 के अपने अंक में टिप्पणी करते हुए लिखा : "रूसियों द्वारा परिकल्पित प्रणाली, बहुत व्यापक प्रणाली होगी...यह किसी भी देश के विरुद्ध निर्दिष्ट नहीं होगी, तथा अनुकूल परिस्थितियों में ग़ैर-एशियाई देश इसमें भाग ले सकेंगे...यह प्रस्ताव ऐसे समझौते के लिए है, जो न तो चीन-विरोधी होगा और न ही अमरीका-विरोधी।"

लेकिन कुछ व्यक्तियों ने इस विचार के विरुद्ध अपनी आशंकायें व्यक्त कीं। आन्द्रेई ग्रोमिको ने सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत में विदेशनीति सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट 10 जुलाई, 1969 को पेश करते हुए इन आशंकाओं के सम्बन्ध में कहा था :

"सम्बन्धित सरकारों ने ज्यों ही इस विचार का अध्ययन किया...त्यों ही कुछ क्षेत्रों ने इस बात को इस तरह से पेश करने की कोशिश की मानो एशिया में सामूहिक सुरक्षा प्रणाली की स्थापना किसी एक देश-विशेष अथवा देशों के किसी समूह के विरुद्ध प्रयुक्त की जायेगी। इस तरह की मनगढ़न्त बातें बिलकुल निराधार हैं। यह तो विश्व के इस भाग में अपने आम हितों के लिए सभी एशियाई राज्यों द्वारा अपनी सुरक्षा किये जाने का सामूहिक प्रयत्न का प्रश्न है।"

अधिकांश एशियाई देशों में इस विचार का विरोध नहीं हुआ। लेकिन चीन ने इसे एकदम रद्द कर दिया। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 25 जुलाई, 1969 को जापान की संसद के समक्ष टोकियो में भाषण करते हुए कहा कि मेरे विचार में यह योजना सैनिक गुटबंदी हो ही नहीं सकती है। उन्होंने आगे कहा कि सोवियत प्रधान मंत्री अलेक्सेई कोसीगिन ने अपनी भारत-यात्रा के दौरान मुझे बताया था कि सोवियत संघ एशिया में कोई फ़ौजी सुरक्षा स्थापित करने के सम्बन्ध में नहीं सोच रहा है।[2]

एशियाई सामूहिक सुरक्षा प्रणाली के विचार के प्रति सिंगापुर, मलेशिया और थाईलैंड में दिलचस्पी पैदा हुई है।

सोवियत संघ का यह मत था कि एशियाई देश इस विचार का कार्यान्वयन स्वयं अपने प्रयासों के ज़रिये करें ताकि एशियाई राष्ट्र बाहरी हस्तक्षेप के बिना अपनी समस्याओं को सुलझाने योग्य बन सकें।

एशिया में सामूहिक सुरक्षा प्रणाली के लिए भारत-सोवियत संधि की अत्यधिक महत्त्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि इस संधि में इस महाद्वीप में स्थायी शान्ति

1 प्राव्दा, 8 जून, 1969

2. सी० चिन्तामणि 'एशियन रिएक्शनस टु सोवियत प्रपोज़ल फ़ॉर एशियन सिक्युरिटी', 'चाईना रिपोर्ट,' खंड 6, अंक 3, मई-जून, 1970, पृ०49-55

सुदृढ़ करने की आवश्कता के सम्बन्ध में विशेष रूप से ज़िक्र किया गया है। संधि के संदर्भ में भारत की विदेशनीति के सम्बन्ध में आयोजित एक गोष्ठी में, जिसे समाजवादी शिक्षा-संस्थान ने आयोजित किया था, 14 अगस्त, 1971 को दुर्गा प्रसाद धर ने उचित ही कहा था कि "...एशिया में शान्ति की पुनस्स्थापना और स्थापना पर विशेष ज़ोर देना आवश्यक था क्योंकि यह अभागा महाद्वीप दीर्घकाल से उत्पीड़न और दुख का शिकार रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से ही इस महाद्वीप में बन्दूकों का शोर एक दिन के लिए भी बंद नहीं हुआ है; एक दिन भी ऐसा नहीं बीता है जब कि शोषकों, उपनिवेशवादियों और आज़ादी के शत्रुओं के हाथों सैकड़ों लोगों की भयावह मृत्यु न हुई हो।"

इसी प्रकार सरदार स्वर्ण सिंह ने 9 अगस्त, 1971 को लोक सभा में बोलते हुए यह बताया था कि एशियाई देशों को समीप लाने की प्रक्रिया भारत-सोवियत संधि से सरल हुई है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी की सोवियत संघ की 1 सिमम्बर, 1970 की यात्रा के बाद जारी संयुक्त वक्तव्य में भारत और सोवियत संघ दोनों ने "एशिया की स्थिति के विकास तथा एशिया में विद्यमान तनावों एंव सैनिक टकराव के ख़तरे वाले क्षेत्रों में एशियाई महाद्वीप में आक्रमणों की कार्रवाइयों को रोकने तथा उन्हें बंद करने के तरीक़ों के लिए विचार-विमर्श और शान्ति के आधार को सुदृढ़ करने पर प्राथमिक रूप से ध्यान" दिया था।

मित्रता, सहयोग और शान्ति की 25 वर्षीय भारत-बंगलादेश संधि भारत-सोवियत संधि के आधार पर की गई थी। इसमें भी यह कहा गया था कि "मित्रता और सहयोग का और अधिक विकास दोनों राज्यों के राष्ट्रीय हितों में तथा एशिया में और विश्व में टिकाऊ शान्ति के हितों में है।"

राष्ट्रपति गिरि ने संसद के संयुक्त अधिवेशन में 13 मार्च, 1972 को क्षेत्रीय सहयोग के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए कहा था :

"भारत व्यापक क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देना तथा उसका प्रसार करना चाहता है, विशेषत: प्रौद्योगिक-व्यापारिक क्षेत्रों में, विज्ञान और संस्कृति के आदान-प्रदान के क्षेत्रों में, सबसे पहले उपमहाद्वीप के देशों के बीच और फिर दक्षिण-एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया और पश्चिम एशिया के देशों के साथ।"[1]

इस प्रकार भारत-नेपाल संधि, भारत-सोवियत संधि और भारत-बंगलादेश संधि एशिया में सामूहिक सुरक्षा का पथ प्रशस्त करती हैं। किन्तु वास्तविक सुरक्षा तभी पैदा होगी जब इस महाद्वीप के अन्य राज्य इन संधियों में निर्दिष्ट सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए ऐसी संधियाँ सम्पन्न करने में ठोस कदम उठाएँगे।

1. द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया, 14 मार्च, 1972

सोवियत-मिस्र संधि, सोवियत-ईराक संधि तथा अनाक्रमण और तटस्थता की सोवियत-अफ़ग़ान और सोवियत-ईरानी पुरानी संधियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि सोवियत संघ अनाक्रमण, तटस्थता और पारस्परिक सहायता की संधियों के माध्यम से क्षेत्रीय और सामूहिक सुरक्षा सुदृढ़ करने की अपनी 'परम्परागत नीति का सुसंगत रूप से निरन्तर पालन करता है।

सोवियत संघ एशिया में सामूहिक सुरक्षा के विचार को अत्यधिक महत्त्व देता है तथा सोवियत नेता अपने भाषणों में इस पर निरन्तर ज़ोर देते रहते हैं। मार्च 1972 में आयोजित सोवियत ट्रेड यूनियनों की 15वीं कांग्रेस में भाषण करते हुए लियोनिद ब्रेज़नेव ने कहा था :

"सामूहिक आधार पर एशिया में सुरक्षा सुनिश्चित करने के विचार के प्रति बहुत-से एशियाई देशों में बढ़ती हुई दिलचस्पी जाग्रत हुई है। यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि एशिया में सुरक्षा का सच्चा पथ सैनिक गठबंधनों और गुटबन्दियों का पथ नहीं है, कुछ राज्यों के खिलाफ़ दूसरे राज्यों को खड़ा करने का पथ नहीं है, बल्कि इसमें रुचि रखने वाले सभी राज्यों के बीच अच्छे पड़ोसी जैसे सहयोग का पथ ही है।"

भारतीय नेता भी इस क्षेत्र के तथा विश्व के अन्य भागों के राज्यों के बीच सहयोग की आवश्यकता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते रहे हैं।

सरदार स्वर्णसिंह ने अप्रैल 1972 में 'न्यू टाइम्स' से एक भेंट-वार्ता में यह मत व्यक्त किया था :

"इस क्षेत्र में सुरक्षा एवं स्थिरता सुनिश्चित करना अनिवार्यत: इस क्षेत्र के देशों का काम है। हमारा विश्वास है कि इस क्षेत्र के बीच अधिकाधिक आर्थिक सहयोग, आपस में इन देशों की प्रभुसत्ता व अखण्डता के प्रति सम्मान तथा इन देशों की तटस्थता सुनिश्चित करने में बड़ी शक्तियों की समझ ऐसे सकारात्मक उपादान होंगे जो इस क्षेत्र की सुरक्षा व स्थिरता में योगदान करेंगे।"[1]

कुछ क्षेत्रों ने यह भ्रामक प्रचार फैलाकर कि सोवियत संघ सामूहिक सुरक्षा के विचार के माध्यम से कुछ विशेष 'लाभ' और 'उपलब्धियाँ' अथवा कुछ देशों को 'पृथक' व उनका 'घिराव' करना चाहता है, सोवियत संघ को बदनाम करने का प्रयास किया है। वस्तुतः, तथ्य तो यह है कि सोवियत संघ इस बात का समर्थन करता है कि सामूहिक सुरक्षा प्रणाली में बिना किसी भेदभाव के एशिया के तमाम राज्य भाग लें। 'इज़वेस्तिया' के राजनीतिक पर्यवेक्षक वी० मतवेयेव ने यह विचार व्यक्त किया था कि शान्ति के ध्येय का जितने भी अधिक राज्य समर्थन करेंगे

1. न्यू टाइम्स, 12 अप्रैल, 1972

प्रगति के उतने ही अधिक अवसर प्राप्त होंगे।[1]

चीनी नेता आजकल एशियाई सुरक्षा के विचार की यह कहकर निन्दा करते हैं कि इसका मुख्य निशाना चीन है, जबकि प्रारम्भ में उन्होंने ही विभिन्न अवसरों पर सामूहिक शान्ति के विचार का समर्थन किया था। चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन-लाई ने जुलाई, 1954 में ब्रिटिश लेबर पार्टी के सचिव मॉर्गन फ़िलिप्स के साथ एक भेंट-वार्ता में कहा था : "मेरा मत है कि एशियाई देशों को क्रमिक रूप से तथा आपसी तौर पर उत्तरदायित्व स्वीकार कर एशिया में सामूहिक शान्ति की रक्षा के लिए एक-दूसरे के साथ परामर्श करना चाहिए।" उन्होंने अपने इस विश्वास की पुष्टि की कि, "अगर एक बार एशिया के किन्हीं भागों में शान्ति स्थापित हो जायेगी तो इस प्रकार के शान्ति-क्षेत्रों का धीरे-धीरे विस्तार करना सम्भव होगा, जिससे सारी दुनिया में शान्ति और सुरक्षा सुदृढ़ की जा सकेगी।"[2]

सोवियत नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रस्तावित एशियाई सामूहिक सुरक्षा प्रणाली का निशाना चीन या कोई अन्य देश नहीं है। लियोनिद ब्रेज़नेव ने सोवियत संघ के गठन की पचासवीं जयन्ती के अवसर पर दिसम्बर 1972 में अपनी रिपोर्ट में कहा था कि "... शान्ति, अच्छे पड़ोसीपन और अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री की हमारी नीति के बुनियादी सिद्धान्तों के मुताबिक़ सोवियत संघ ने एशिया में सामूहिक सुरक्षा प्रणाली का विचार पेश किया है। कुछ राजधानियों में यह कहा जा रहा है कि हमारे इस प्रस्ताव का मक़सद चीन का 'विरोध' करना या उसे 'घेरना' है। ऐसे आरोप बिल्कुल निराधार हैं।" उन्हें इसमें तनिक भी सन्देह नहीं था कि चीन लोक गणतंत्र "इस प्रणाली में समान अधिकार सम्पन्न साझीदार" बनेगा।

भारत एशिया में सामूहिक सुरक्षा के विचार का अध्ययन सुसंगत रूप से कर रहा है। विदेश मंत्रालय की 1972-73 की रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है : "इस सम्बन्ध में अनेक प्रस्तावों पर अधिकाधिक विचार-विमर्श करना तथा एक-दूसरे से परामर्श के साथ अपनी स्वतंत्रता व प्रभुसत्ता की रक्षा करना तथा क्षेत्रों में आपस में सहयोग को सुदृढ़ करना इस क्षेत्र के देशों का काम है।"[3]

इसी प्रकार श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अप्रैल 1973 में श्रीलंका की अपनी यात्रा के दौरान यह विचार व्यक्त किया था कि एशियाई राष्ट्रों की सुरक्षा अधिकाधिक क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग से सुदृढ़ हो सकती है और अन्ततः सुरक्षा तो

1. इज़्वेस्तिया, 7 अप्रैल, 1972
2. देवेन्द्र कौशिक व सत्येन्द्र परीथुम, 'एशिया में सामूहिक सुरक्षा की दिशा', नई दिल्ली, 1974, पृ० 72
3. 'रिपोर्ट', पृ० 46

आन्तरिक राजनीतिक एकता व आर्थिक शक्ति पर निर्भर करती है। उन्होंने यह स्पष्ट किया था कि अधिकाधिक क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग से यह तात्पर्य नहीं है कि यह किसी देश विशेष या गुट के विरुद्ध लाक्षित है, किन्तु इसका अर्थ है अपनी आर्थिक स्थिरता सुदृढ़ करने में प्रत्येक राज्य दूसरे की सहायता करे।"[1]

सोवियत नेताओं ने एशिया में सामूहिक सुरक्षा की आवश्यकता पर बार-बार ज़ोर दिया है। निकोलाई पोदगोर्नी ने अपनी क़ाबुल यात्रा के दौरान 21 मई, 1973 को यह मत व्यक्त किया था कि सभी ज़टिलताओं के बावजूद एशिया में सुरक्षा प्रणाली स्थापित करने का कार्य 'यथार्थपरक' व व्यवहार्य' है तथा वियतनामी जनता की विजय होने और दक्षिण एशिया में तनाव कम होने के परिणामस्वरूप नई सम्भावना पैदा हो रही हैं।

लियोनिद ब्रेज़नेव ने अगस्त 1973 में अल्माअता में भाषण करते हुए यह पुनः स्पष्ट किया था कि शान्ति की दिशा में सामूहिक सुरक्षा वास्तविक पथ है। उन्होंने यह भी कहा था कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समय व पर्याप्त प्रयासों की आवश्यकता पड़ेगी, किन्तु यह विश्वास भी व्यक्त किया था कि एशियाई जनगण अन्ततः इसे अपनायेंगे। चीनी आरोपों का करारा जवाब देते हुए उन्होंने कहा :

"हम अनेक बार कह चुके हैं और एक बार फिर दोहराते हैं : सामूहिक सुरक्षा में निरपवाद रूप से सभी एशियाई देश समान भागीदार हों, सोवियत संघ की यही नीति है। हम जिस प्रणाली का प्रतिपादन कर रहे हैं; वह किसी को एक-पक्षीय रीति से लाभ नहीं पहुँचाएगी और न ही पहुँचानी चाहिए; इसकी स्थापना में प्रत्येक एशियाई राज्य से योगदान करने का आह्वान किया जाता है।"

लियोनिद ब्रेज़नेव को अपनी भारत-यात्रा के दौरान इस विचार को और अधिक उजागार व स्पष्ट करने का एक अन्य अवसर मिला। अपने सम्मान में 27 नवम्बर, 1973 को आयोजित नागरिक अभिनन्दन समारोह में भाषण करते हुए उन्होंने कहा :

"हमारा देश चाहता है कि नये-नये इलाक़ों में तनाव कम हो, ताकि तनाव में इस कमी का विस्तार फिर सारे संसार में हो सके। हम अच्छी तरह समझते हैं कि अगर एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के जनगण और राज्यों की इच्छा-शक्ति, विवेक, ज़िम्मेदारी और उत्साह को विश्व राजनीति के पलड़े में पूरी तरह न रखा जाये, तो इस समस्या को हल करना दरअसल नामुमकिन होगा।

"हमारे दृष्टिकोण का सार यह है : हम सभी देशों को सुझाव देते हैं—

1. द स्टेट्समेन' 30 अप्रैल, 1973

आइए, हर राज्य की स्वतंत्रता और प्रभुसत्ता का आदर करें, एक-दूसरे के ख़िलाफ़ कोई फ़ौजी कार्रवाई न करें और फ़ौजी ताक़त का प्रयोग करने की धमकी भी एक-दूसरे को न दें। आइए, हम न केवल साथ-साथ शान्ति से रहें, बल्कि आपस में हर प्रकार का सहयोग भी करें। हम सभी सरकारों से यह अपील करते हैं और सार्वजनिक ताक़तों से भी हम यही अपील करते हैं; क्योंकि हमारे विचार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नया रूप देने में इनका बहुत योगदान हो सकता है।"

लियोनिद ब्रेज़नेव ने संसद् के संयुक्त अधिवेशन में 29 नवम्बर, 1973 को अत्यधिक प्रौढ़ और प्रांजल ढंग से अपने भाषण में एशियाई सामूहिक सुरक्षा के विचार पर प्रकाश डाला तथा यह अनुरोध किया कि इस सम्बन्ध में 'सम्यक् और सर्वांगपूर्ण विचार-विमर्श' किया जाये क्योंकि इससे 'विश्व में शान्ति और सुरक्षा की समस्याओं पर सभी सम्बन्धित राज्यों के लिए स्वीकार योग्य समान दृष्टिकोण की रूपरेखा तैयार करने में सहायता' मिलेगी। उन्होंने 'सक्रिय, व्यापक और रचनात्मक विचार-विमर्श' का आह्वान किया जिससे अत्यावश्यक कर्त्तव्यों की गहरी समझ पैदा करने में सहायता मिल सकेगी। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की : "एशिया शान्ति, मित्रता और सहयोग का महाद्वीप बन सकता है तथा इसे ऐसा बनना ही चाहिए। इस महान् लक्ष्य के लिए प्रयास और संघर्ष करना उचित ही होगा।"

उन्होंने अपने भाषण में कहा कि सोवियत संघ एशिया में सामूहिक प्रयासों के माध्यम से सुरक्षा सुदृढ़ करने के विचार के 'संकलिपत प्रतिपादक' के रूप में प्रसिद्ध हैं। "इसका कारण केवल यह नहीं है कि हमारे राज्य का अधिकांश हिस्सा एशिया में पड़ता है। हमारा विश्वास है कि मानवजाति की आधी से अधिक जनसंख्या वाले इस महाद्वीप में शान्ति, सुरक्षा और सहयोग के सम्बन्धों की स्थापना विश्वव्यापी पैमाने पर शान्ति और राष्ट्रों की सुरक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में विश्व-ऐतिहासिक महत्त्व का क़दम होगी।"

उन्होंने एशियाई देशों की महान् उपलब्धि का ज़िक्र करते हुए कहा : "स्थायी शान्ति हासिल करने की सम्भावना के प्रति और अपने आन्तरिक विकास के वर्तमान कर्त्तव्यों पर एशियाई देशों के प्रयास संकेन्द्रित करने की अनुकूल सुस्थिर परिस्थिति के सृजन की सम्भावना के प्रति एशियाई देशों में विश्वास बढ़ रहा है। एशियाई राज्यों की सुरक्षा के संवर्धन और दृढ़ीकरण में सहायक व्यावहारिक मार्गों और ठोस क़दमों की—चाहे वे आंशिक हों या आम—खोज में तेज़ी आ रही है।"

एशिया के शान्तिपूर्ण भविष्य के प्रति चिन्ता से प्रेरित होकर अनेक पहल-क़दमियों का ज़िक्र करते हुए ब्रेज़नेव ने दक्षिण-पूर्व एशिया की तटस्थता के विचार पर दक्षिण एशियाई राज्यों के बीच सम्बन्धों के ऐसे फ़ार्मूले की खोज पर,

जिससे उनके बीच अच्छे पड़ोसी जैसा सहयोग सुनिश्चित हो, हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बना देने से सम्बन्धित प्रस्ताव और क्षेत्रीय सहयोग की योजनाओं पर प्रकाश डाला।

एशिया में सामूहिक सुरक्षा कितने ठोस रूप से इस क्षेत्र के देशों के लिए सहायक सिद्ध होगी ? ब्रेज़नेव ने यह और देकर कहा कि सोवियत संघ के नेता "इस विषय में न सिर्फ़ राजनीतिक बल्कि आर्थिक पहलू को भी ध्यान में रखते हैं। चिरस्थायी शान्ति रहने पर एशियाई देश पहली बार अपने समक्ष उपस्थित आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का हल निकालने पर और अपनी संस्कृति के विकास पर ध्यान केन्द्रित करने में समर्थ होंगे। इन परिस्थितियों में उनके लिए अपनी आर्थिक स्वतंत्रता को सुदृढ़ करना अधिक सुगम बन जायेगा।"

लियोनिद ब्रेज़नेव की यात्रा के अन्त में जारी भारत-सोवियत संयुक्त घोषणा में भारत व सोवियत संघ ने इसकी पुनर्पुष्टि की कि "वे एशिया में, विश्व के सबसे बड़े और सबसे अधिक जनसंख्या वाले इस क्षेत्र के सभी राज्यों के संयुक्त प्रयत्नों के आधार पर, परस्पर लाभदायक सहयोग के विस्तृत विकास और शान्ति एवं स्थायित्व के सुदृढ़ बनाये जाने को विशेष महत्त्व देते हैं। सोवियत संघ और भारत ऐसी स्थितियाँ सर्जित करने में सहायता प्रदान करने की आवश्यकता के सम्बन्ध में सहमत हुए जिनमें जनगण शान्ति तथा अच्छे पड़ोसीपन के वातावरण में रह सकें ताकि जन-शक्ति समेत उनके संसाधनों का इस्तेमाल उन सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए हो सके जो जनगण के रहन-सहन के स्तर में सुधार तथा उनके अर्थतंत्र और संस्कृति के उत्थान के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।"

ब्रेज़नेव की भारत-यात्रा का ठोस व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि एशिया में सामूहिक सुरक्षा के विचार के सम्बन्ध में अनेक शंकाएँ दूर हो गईं और दोनों देशों ने इसकी आवश्यकता, महत्त्व तथा इसके कार्यान्वयन के तरीक़ों पर अधिकाँश रूप से समान विचार व्यक्त किये।

एशिया में सामूहिक सुरक्षा का विचार इस देश में निरन्तर व्यापक समर्थन पा रहा है। भारत के इस्पात व खान मंत्री श्री केशवदेव मालवीय ने अखिल भारतीय शान्ति व एकजुटता संगठन द्वारा सयुक्त रूप से आयोजित सभा का नई दिल्ली में 11 अप्रैल, 1974 को उद्घाटन करते हुए कहा : "भारत में एशियाई देशों के बीच शान्ति, मित्रता व सहयोग का इच्छुक है तथा एशियाई देशों के बीच सामूहिक सहयोग की स्थापना में इसने प्रारम्भिक प्रयास किये हैं।"

भारत व सोवियत संघ में भारत-सोवियत सन्धि की तीसरी वर्षगाँठ सोत्साह मनायी गई थी। भारत के तत्कालीन प्रतिरक्षा मंत्री श्री जगजीवन राम ने दिल्ली राज्य 'इस्कस' द्वारा आयोजित जन-सभा का दिल्ली में 8 अगस्त, 1974 को

उद्घाटन करते हुए स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी :

"लेकिन आज भी ऐसी सक्रिय शक्तियाँ मौजूद हैं, जो शान्ति के मार्ग में बाधाएँ पैदा करती है और राष्ट्रों की सुरक्षा को खतरा पैदा करती हैं। इस खतरे का जनगण की एकता व मित्रता से ही मुक़ाबला किया जा सकता है। यह लक्ष्य दृष्टि में रखते हुए ही महासचिव ब्रेज़नेव के एशिया में सामूहिक सुरक्षा प्रणाली के प्रस्ताव ने, उन शक्तियों की कार्रवाइयों की तुलना में जो विश्व में एक के बाद दूसरे भाग में युद्ध भड़का रहे हैं, प्रभावित किया है। हमें सोवियत संघ में समान आधार व उद्देश्य की एकता मिलती है। हमने शोषण से मुक्त विश्व, शान्ति व समृद्धि से युक्त विश्व का सृजन करने के लिए एक सन्धि सम्पन्न की है।"

सोवियत संघ एशियाई महाद्वीप की मौजूदा जटिल स्थिति से पूरी तरह परिचित है। आन्द्रेई ग्रोमिको ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के 29वें पूर्णाधिवेशन में 24 सितम्बर, 1974 को भाषण करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा था :

"राज्यों के सम्मिलित प्रयत्नों से एशिया में शान्ति के दृढ़ीकरण के विचार को व्यावहारिक रूप देने की बात को, हमारी राय में, बहुत दूर का मामला नहीं होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ की स्थिति पेचीदा है। एशियाई महाद्वीप में गड़बड़ी, झगड़ों और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के स्थल कम नहीं हैं।"

सोवियत संघ ने बार-बार विश्व के मामलों में एशिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका को मान्यता दी है। समरकन्द में 25-28 सितम्बर, 1974 को सोवियत अफ्रेशियाई एकजुटता समिति के तत्त्वावधान में आयोजित 'एशिया में शान्ति व सुरक्षा के लिए संघर्ष—आज का एक जीवन्त कर्त्तव्य' सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने वालों के नाम अपने बधाई-सन्देश में लियोनिद ब्रेज़नेव ने कहा था :

"एशियाई जनगण अपनी स्वतंत्रता को मज़बूत बनाने तथा उपनिवेशवाद द्वारा खड़ी की गयी बाधाओं और कठिनाइयों को दूर करने के मार्ग पर विश्वास के साथ आगे बढ़ रहे हैं। आज वे विश्व-राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर उनका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। एशियाई महाद्वीप में सामूहिक प्रयत्नों से टिका ऊ शान्ति व सुरक्षा हासिल करने की संभावना के प्रति एशियाई देशों का विश्वास बढ़ता जा रहा है। इससे आर्थिक व सांस्कृतिक विकास के, सामाजिक प्रगति के और राज्यों के बीच चहुँमुखी सहयोग के फ़ौरी कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण होगा।"

समरकन्द अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने वालों की एशिया की जनता व जनगण के नाम अपील में कहा गया :

"हमें विश्वास है कि एशिया के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शान्तिपूर्ण विकास की ख़ातिर जनगण की सुरक्षा पहले से कहीं ज़्यादा विश्वसनीय रूप से सुनिश्चित

की जानी चाहिए। इससे एशिया के जनगण को टिकाऊ शान्ति का महान् वरदान प्राप्त होगा। इससे उनके समक्ष उपस्थित विकास की बड़ी-बड़ी समस्याओं को हल करने की नयी सम्भावनाएँ भी उत्पन्न होंगी। एशिया के जनगण उपनिवेशवाद की दारुण विरासत पर क़ाबू पाते जा रहे हैं। वे स्वतंत्रता के दृढ़ीकरण, आर्थिक आत्म-निर्भरता और सामाजिक रूपान्तरण के मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष में वे समाजवादी राज्यों के साथ घनिष्ठ सहयोग करते हुए अपनी अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों को सुदृढ़ बना रहे हैं और घटना-प्रवाह पर अपना प्रभाव मज़बूत कर रहे हैं।"

लेकिन एशिया में सुरक्षा किस प्रकार सुनिश्चित की जा सकती है ? इस पर टिप्पणी करते हुए हिन्द महासागर के सम्बन्ध में दिल्ली में आयोजित 14-17 नवम्बर, 1974 तक हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सोवियत प्रतिनिधिमण्डल के नेता प्रोफ़ेसर विक्तर पोगोव ने कहा :

"एशियाई देशों में जनगण द्वारा सुरक्षा सुनिश्चित करने के तरीक़ों की खोज आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी व सांस्कृतिक सहयोग की सम्भावनाओं के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी है। इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई है। फिर भी यह एशिया में सामूहिक सुरक्षा से उन्मुक्त होने वाले अवसरों से कम है। मसलन, एशियाई जनगण के हित में बड़े पैमाने पर खनिज सम्पदा प्राप्त करने, उद्योग, परिवहन और ऊर्जा विकसित करने आदि की परियोजनाएँ लागू की जा सकती हैं।"

इस विचार का अनेक एशियाई देशों ने स्वागत किया है। अफ़ग़ानिस्तान के राज्याध्यक्ष व प्रधानमंत्री मोहम्मद दाऊद की जून 1974 की सोवियत संघ यात्रा के बाद जारी सोवियत-अफ़ग़ान संयुक्त विज्ञाप्ति में यह कहा गया था :

"सोवियत संघ व अफ़ग़ान गणतंत्र को एशिया में शान्ति व सहयोग पैदा करने में गहरी दिलचस्पी है। यह मानते हैं कि एशिया के तमाम राज्यों के संयुक्त प्रयासों द्वारा सुरक्षा प्रणाली का सृजन एशियाई जनगण के हितों की पूर्ति करेगा। यह शान्तिपूर्ण तरीक़ों से विवादों के सुलझाने में और उपनिवेशवाद के अवशेषों को समाप्त करने में योगदान करेगा।

"सोवियत संघ व अफ़ग़ानिस्तान हर सम्भव तरीक़े से तनाव कम करने की तथा समग्र एशिया में राजनीतिक वातावरण में आमूल विकास करने और टिकाऊ व स्थायी शान्ति की स्थिति पैदा करने की ओर लक्षित अपनी नीति की सफलता में और अधिक योगदान करेंगे। यह नोट किया गया कि विभिन्न सामाजिक व राजनीतिक प्रणालियों वाले राज्यों के शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धान्तों के आधार पर तथा जनगण के न्यायसंगत अधिकारों के प्रति सम्मान से एशिया की स्थिति के सामान्यीकरण में एशियाई देशों के जनगण के हितों में सर्वांगीण व

समान सहयोग के विकास के लिए व्यापक सम्भावनाएँ उन्मुक्त होती हैं।"

अतः, निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वियतनामी जनगण की विजय ने लाओस में राष्ट्रीय समझौते ने, कम्बोडिया की जनता की विजय ने, भारतीय उपमहाद्वीप में सामान्यीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत ने—इन सबने एशिया में शान्ति स्थापित करने का नया आधार तैयार किया है। पड़ोसी देशों में समझ व इसके बाद क्षेत्रीय समझौतों से शनैः-शनैः पीकिंग के निराधार व बेहूदा आरोपों को दूर करते हुए समग्र महाद्वीप में सुरक्षा प्रणाली स्थापित करना अन्ततः सम्भव हो सकेगा। अमरीकी साम्राज्यवाद के कुचक्रों से भी सावधान रहना एशियाई देशों का प्रमुख कर्त्तव्य है, क्योंकि किसी-न-किसी बहाने अमरीका एशिया में अपनी मौजूदगी क़ायम रखने की हर सम्भव कोशिश करेगा। उसकी नव-उपनिवेशवाद की चालों के ख़तरे को हमें कम नहीं समझना चाहिए। अमरीका-चीन की साँठगाँठ एशिया की शान्ति व सुरक्षा के लिए भयानक ख़तरा है, जिससे सावधान रहकर तथा अपनी सुरक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाकर और अपनी आर्थिक प्रगति की गति को तेज़ करके ही एशियाई देश व जनगण शान्ति, समृद्धि व प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।

4

सागरों से ख़तरा

एशिया में सामूहिक सुरक्षा प्रणाली तथा हिन्द महासागर के साम्राज्यवादी कुचक्रों से सुरक्षित रखना दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई समस्याएँ हैं। ये दोनों इस महाद्वीप में साम्राज्यवाद को रोकने तथा राष्ट्रों की स्वतंत्रता सुरक्षित करने की ओर लक्षित हैं। लेकिन अभी भी कुछ ऐसी ताक़तें हैं जो 'बड़ी ताक़तों' की प्रतिद्वन्द्विता और हिन्द महासागर में सोवियत संघ की 'बढ़ती हुई नौसैनिक उपस्थित' की आड़ में वास्तविक समस्या को छिपाने में निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। अतः तथ्यों का विवेचन करना अनिवार्य है।

यह सत्य है कि 1968 में हिन्द महासागर में अपने प्रवेश के बाद सोवियत संघ के समुद्री बेड़े 16 देशों का 50 से अधिक बार भ्रमण कर चुके हैं। लेकिन वे भ्रमण हमेशा मित्रतापूर्ण यात्राएँ थीं न कि ब्लैकमेल करने के साधन। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि हिन्द महासागर में सोवियत संघ का एक भी नौसैनिक या हवाई अड्डा नहीं है। इसके ठीक विपरीत गाम द्वीप, दिएगो गार्सिया, अस्मारा, मसीरा और बहरीन द्वीप समूह, उत्तर पश्चिम अन्तरीय व कोकवर्न साऊंड आदि में ब्रिटेन व अमरीका के सैनिक अड्डे हैं। सोवियत संघ ने हिन्द महासागर क्षेत्र के किसी भी देश के साथ कोई सैनिक क़रार नहीं किया है जबकि ब्रिटेन व अमरीका के ऐसे क़रार दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया व अन्य देशों के साथ हैं।

सोवियत संघ ने अफ्रेशियाई जनगण की उस इच्छा के प्रति हमेशा सकारात्मक रवैया अपनाया है जिसके अनुसार वे हिन्द महासागर को शान्ति के महासागर में परिवर्तित करना चाहते हैं और नाभिकीय अस्त्रों से मुक्त रखना चाहते हैं। लियोनिद ब्रेज़नेव ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 24वीं कांग्रेस में 30 मार्च, 1971 को भाषण करते हुए घोषणा की थी कि विश्व के अन्यान्य भागों में परमाणु-मुक्त क्षेत्रों की स्थापना का प्रसार करना शान्ति व अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए संघर्ष का आधारभूत ठोस कार्य है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी की सितम्बर 1971 की सोवियत संघ-यात्रा के अन्त

में जारी किये गये संयुक्त वक्तव्य में सोवियत संघ ने हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बनाने की "समस्या का अध्ययन करने के लिए तथा समान आधार पर अन्य शक्तियों से मिलकर इस समस्या के समाधान के लिए" अपनी 'तत्परता' ज़ाहिर की थी। वस्तुतः अमरीका व ब्रिटेन की हिन्द महासागर में बढ़ती हुई उपस्थिति व इनके प्रभाव के सम्बन्ध में सोवियत संघ ने हमेशा चिन्ता व्यक्त की है। यहाँ यह ज़िक्र करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि ब्रिटेन व अमरीका ने इस क्षेत्र को शान्ति का क्षेत्र बनाने के प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिए अपनी सहमति कभी व्यक्त नहीं की।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 2 जून, 1973 को आस्ट्रेलिया ब्रॉडकास्टिंग कारपोरेशन को बताया था कि मैं ऐसा नहीं समझती कि इस क्षेत्र में सोवियत संघ का इरादा शान्तिपूर्ण होने के अलावा और कुछ भी हो सकता है।

लियोनिद ब्रेज़नेव की भारत-यात्रा ने हिन्द महासागर के क्षेत्र को शान्ति का क्षेत्र बनाने के ध्येय को और आगे बढ़ाया। श्रीमती इन्दिरा गांधी की सितम्बर 1971 की सोवियत संघ-यात्रा के दौरान सोवियत पक्ष ने "इस समस्या का अध्ययन करने के लिए तथा समान आधार पर अन्य शक्तियों से मिलकर इस समस्या के समाधान के लिए" अपनी 'तत्परता' व्यक्त की थी तो इस बार दोनों पक्षों ने ही अपनी इस तत्परता की पुनर्पुष्टि की कि वे इस समस्या से सम्बद्ध "सभी राज्यों के साथ मिलकर समान आधार पर हिन्द महासागर को 'शान्ति के क्षेत्र' में बदलने के प्रश्न का अनुकूल समाधान खोजने में भाग लेंगे।"

हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बनाने की समस्या का समाधान तलाश करने के प्रयास जारी हैं, लेकिन अमरीका खुल्लमखुल्ला इस क्षेत्र में अपनी ताक़त का प्रसार करने की योजनाओं को अमल में ला रहा है। अमरीका के प्रतिरक्षा मंत्री जेम्स श्लेसिंगर ने दिसम्बर 1973 में एक प्रेस सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा था कि पेंटागन हिन्द महासागर के क्षेत्र में अमरीकी सैनिक उपस्थिति बढ़ाना चाहता है। यह घोषणा करते हुए कि वहाँ 'ओरिस्कानी' एयरक्राफ़्ट कैरियर के नेतृत्व में जंगी जहाज़ों का एक दल भेजा जा रहा है, उन्होंने कहा कि वाशिंगटन हिन्द महासागर में पहले से भी अधिक अपनी नौसैनिक शक्ति नियमित रूप से भेजना चाहता है। उन्होंने इस भयंकर व विस्फोटक रहस्य का उद्घाटन इस बहाने से किया कि अमरीका तथाकथित सोवियत संघ की चालों को नाकाम करना चाहता है। लेकिन यह सर्वविदित है कि उनका यह बहाना कितना खोखला है।

सिंगापुर में सोवियत संघ के राजदूत बोरिस देर्जुकान्निकोव ने अमरीकी प्रतिरक्षा मंत्री के आरोपों का करारा उत्तर दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा : "हिन्द महासागर में अड्डे बनाने की हमारी कोई इच्छा नहीं है।" उन्होंने आगे

यह भी कहा कि हिन्द महासागर में सोवियत नौसैनिक वेड़े किसी देश के लिए खतरा पैदा नहीं करते। सोवियत जहाज़ों की उपस्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि सोवियत सरकार ने जहाजरानी के अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों के अन्तर्गत ही अपने नौसैनिक वेड़े वहाँ भेजे हैं।

भारतीय संसद में पश्चिमी जगत के प्रचार का ज़िक्र करते हुए जब यह प्रश्न उठाया गया कि भारत ने सोवियत जहाज़ों को बन्दरगाह की सुविधाएँ दे रखी हैं, तो राज्यसभा में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर दो-दिवसीय बहस में बोलते हुए सरदार स्वर्ण सिंह ने घोषणा की "कि प्रचार में लगाए गए आरोप बिल्कुल निराधार" हैं। उन्होंने यह भी कहा कि "हमें ऐसी भ्रामक रिपोर्टों को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए।" उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हमेशा की तरह यह सिर्फ़ वेपर की उड़ानों के अलावा और कुछ नहीं है तथा ऐसे प्रस्तावों में कोई सार नहीं है जो "दो मित्र देशों में किसी-न-किसी प्रकार की ग़लतफ़हमी पैदा करने के लिए" सामने रखे जाते हैं। "हमें ऐसे प्रयासों से सावधान रहना चाहिए···हमें ऐसी हर चाल का दृढ़तापूर्वक तिरस्कार कर देना चाहिए, जो किसी प्रकार का वैचारिक अन्तर या ग़लतफ़हमी पैदा करने की ओर लक्षित हो।"

हिन्द महासागर के सैनिकीकरण के बहुत-से तथ्य साम्राज्यवादियों के सदियों पुराने उस प्रयास को उद्घाटित करते हैं जिससे वे सागर पर व विश्व की महत्त्व-पूर्ण संचार लाइनों पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं तथा अपना प्रभाव सुनिश्चित करने के लिए इस क्षेत्र के राज्यों पर अपना सैनिक दबाव डालना चाहते हैं।

अगस्त 1973 में कम्युनिस्ट देशों के साथ अमरीकी सम्बन्धों पर सेनेट की वैदेशिक मामलों की कमेटी में बोलते हुए सोवियत संघ में अमरीका के भूतपूर्व राजदूत एवरेल हैरीमेन ने चेतावनी दी थी कि दिएगो गार्सियाकी योजना के कारण पेंटागन सोवियत संघ से टकराव का खतरा ले रहा है। उन्होंने इस योजना को 'निपट वेहूदगी' कहा था।

सोवियत संघ ने दिएगो गार्सिया द्वीप में साम्राज्यवादी कुचक्रों की कठोरतम शब्दों में निन्दा की है।

संयुक्त राष्ट्र की महासभा के 6 दिसम्बर, 1973 के प्रस्ताव सं० 3080 (XXVIII) के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के महासचिव ने हिन्द महासागर में बड़ी ताक़तों की सैनिक उपस्थिति के बारे में हर पक्ष के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए तथ्यपरक वक्तव्य तैयार करने के लिए प्रतिरक्षा सम्बन्धी तीन विशेषज्ञों को नियुक्त किया था। उनकी रिपोर्ट की आलोचना करते हुए संयुक्त राष्ट्र में

सोवियत संघ के स्थायी प्रतिनिधि ने महासचिव के नाम 18 जून, 1974 के अपने पत्र में लिखा :

"हिन्द महासागर के क्षेत्र में सोवियत संघ का न तो कभी कोई सैनिक अड्डा था, न उसने वहाँ कोई सैनिक अड्डा स्थापित किया है, और न ही वह वहाँ कोई सैनिक अड्डा क़ायम कर रहा है। सोवियत जहाज़ों व वेड़ों ने इस क्षेत्र में किसी को कभी धमकी नहीं दी है। अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के वर्तमान नियमों व सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के अनुसार वे भ्रमण-परिचालन का प्रशिक्षण देने में तथा हिन्द महासागर में प्रयुक्त सोवियत अन्तरिक्षयानों की तलाश करने व प्राप्त करने में व्यस्त हैं। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि सोवियत संघ के यूरोपीय भाग से सोवियत सुदूर पूर्व में आवागमन के रास्ते हिन्द महासागर से होकर जाते हैं, इसलिए जहाज़ों व वेड़ों का सुरक्षित मार्ग सुनिश्चित करने के लिए इस क्षेत्र में सोवियत संघ वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहा है।"

उन्होंने यह भी दोहराया कि हिन्द महासागर में बड़ी ताक़तों की सैनिक उपस्थिति की समस्या का अनुकूल समाधान तलाश करने में समानता के आधार पर दिलचस्पी रखने वाले तमाम राज्यों के साथ भाग लेने के लिए सोवियत संघ तैयार है।

सोवियत पर्यवेक्षकों के अनुसार पेंटागन की सैनिक-रणनीतिक योजना में दिएगो गार्सिया को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है तथा हिन्द महासागर में साम्राज्यवादी ताक़तों के सैनिक अड्डों के वर्तमान व्यापक जाल में दिएगो गार्सिया प्रथम कड़ी न होकर अन्तिम कड़ी है। हिन्द महासागर के बीचों-बीच होने की वजह से इसकी भौगोलिक स्थिति इस साम्राज्यवादी-जाल में मुख्य भूमिका अदा करेगी।

'तास' ने अमरीकी राष्ट्रपति फ़ोर्ड के इस आरोप का खण्डन किया कि हिन्द महासागर में सोवियत संघ के तीन प्रमुख नौसैनिक अड्डे हैं। सोमालिया, ईराक़ व यमन लोक जनवादी गणतंत्र की सरकारों के प्रवक्ताओं ने भी इस आरोप का खण्डन किया कि उनके भूक्षेत्रों पर सोवियत अड्डे विद्यमान हैं।

नवम्बर 1974 में नई दिल्ली में आयोजित चार-दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन "हिन्द महासागर—विदेशी सैनिक अड्डों के विरोध में तथा शान्ति के क्षेत्र के लिए" का उद्‌घाटन करते हुए भारत के विदेश मंत्री चह्वाण ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि दिएगो गार्सिया सैनिक अड्डे का प्रस्तावित प्रसार केवल बड़ी ताक़तों की प्रतिद्वन्द्विता और तनाव को बढ़ावा देगा। यह न केवल तटवर्ती राज्यों के हितों को प्रभावित करेगा, बल्कि स्वयं बड़ी ताक़तों के मतानुसार घातक भी सिद्ध होगा।"

चह्वाण की यह मान्यता थी कि विदेशी अड्डे समाप्त करने तथा हिन्द

महासागर को शान्ति के क्षेत्र में विकसित करने के लिए क़दम उठाने का अभी समय है। इस काम में अधिक देरी नहीं की जानी चाहिए। उन्होंने यह भी कहा था कि प्रस्ताव पास करना या विरोध व्यक्त करना ही पर्याप्त नहीं है।

कांग्रेस अध्यक्ष देवकान्त बरुआ ने इसी सम्मेलन में बोलते हुए यह स्पष्ट किया था कि दिएगो गार्सिया में सैनिक अड्डे का स्थापना अनिवार्य रूप से बड़ी ताक़तों में टकराव की स्थिति पैदा करेगी, और जिसमें अन्ततः भारत को भी शामिल होना पड़ सकता है।

सम्मेलन के समापन अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए भारत के प्रतिरक्षा मंत्री सरदार स्वर्ण सिंह ने हिन्द महासागर के उत्तरी क्षेत्र में नियोजित नौसैनिक गतिविधियों के प्रति भारत सरकार के कड़े विरोध की घोषणा की। उन्होंने कहा कि अटलांटिक के स्थान पर हिन्द महासागर में 'नाटो' शक्तियों की नौसैनिक गतिविधियाँ तमाम प्रकार की साजिशों से ऊपर हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका मंसूबा कोई सैनिक उपलब्धि करना है।

सम्मेलन में सोवियत प्रतिनिधिमण्डल के नेता विक्तर पोपोव ने बोलते हुए कहा कि पश्चिमी देशों व सोवियत संघ के बीच हिन्द महासागर में 'सैनिक प्रतिद्वन्द्विता' का कोई प्रश्न नहीं है।

"विषय का सारतत्त्व दो 'महाशक्तियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता' के आरोप में निहित नहीं है। आधुनिक साम्राज्यवाद के मूल देश—अमरीका द्वारा अपनाये जा रहे लक्ष्यों व साधनों की तुलना 'तीसरी दुनिया' की ओर सोवियत संघ की बिल्कुल पृथक अन्तर्राष्ट्रीयतावादी नीति से करना असम्भव है जो, जैसा कि सोवियत संघ के विदेश मंत्री कॉमरेड ए० ग्रोमिको ने हाल ही में कहा था, 'न केवल सोवियत जनता के और समाजवादी देशों के हितों की रक्षा करती है बल्कि विश्व की अत्यधिक विकसिति शक्ति—अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग, तमाम मेहनतकश जनगण के शान्ति-हितों को भी अभिव्यक्ति प्रदान करती है'।

"'सैनिक प्रतिद्वन्द्विता' का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता। सोवियत संघ तो हमेशा से हथियारों की होड़ का सख्त विरोधी रहा है। शान्ति और सुरक्षा के लिए यह जो क़दम उठा रहा है उनका उन खुदगर्जी से भरे क़दमों से कुछ भी लेना-देना नहीं है, जो विश्व पर प्रभुत्व के सपने देखने वाले सैनिक-औद्योगिक और दुःसाहसवादी सैनिक-क्षेत्रों के हितों की ही खिदमत करते हैं। कुछ साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञ व सिद्धान्तकार हिन्द महासागर में 'शक्ति सन्तुलन' का सिद्धान्त प्रचारित कर रहे हैं। इन सब सिद्धान्तों का लक्ष्य है एशिया का विभाजन करना और परिणामस्वरूप स्थायी उपादान के रूप में तनाव पैदा करना।"

पोपोव ने आगे कहा :

"इस सबसे यह देखा जा सकता है कि कठिनाइयों और बाधाओं पर विजय

पाने के लिये, जिनमें वस्तुतः बाधायें और एशियाई तनाव-शैथिल्य के विरोधियों द्वारा कृत्रिम तौर पर खड़ी की गयी बाधायें दोनों शामिल हैं, हमें अभी बहुत कुछ करना है। हमें महाद्वीप में शान्ति और सुरक्षा की दिशा में एक-एक करके ठोस क़दम उठाते हुए उस लक्ष्य की दिशा में अविचल रूप से बढ़ना चाहिए। इस प्रकार का एक क़दम है हिन्द महासागर में सैनिक अड्डों को खत्म करना तथा एशियाई और अफ्रीकी जनगण के विरुद्ध लक्षित साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ़ संघर्ष के पक्ष में व्यापक जन-समर्थन जुटाना। हमें विश्वास है कि हमारे सतत् प्रयास और मिलजुल कर उठाये गये क़दम सफल होंगे। वह दिन दूर नहीं जब हिन्द महासागर का क्षेत्र और पूरा एशिया महाद्वीप स्थायी-शान्ति का क्षेत्र बन जायेगा तथा एशिया और अफ्रीका के जनगण स्वतंत्र विकास के पथ पर नई सफलताएँ हासिल करेंगे।"

सोवियत पक्ष एक बार पुनः भारत-स्थित सोवियत राजदूत वी० एफ़० माल्त्सेव ने व्यक्त किया। लियोनिद ब्रेज़नेव की यात्रा की पहली जयन्ती के अवसर पर केरल राज्य 'इस्कस' द्वारा त्रिवेन्द्रम में 26 नवम्बर, 1974 को आयोजित जन-सभा में भाषण करते हुए उन्होंने घोषणा की :

"हिन्द महासागर के सम्बन्ध में सोवियत संघ की स्थिति सुस्पष्ट और सुविदित है। हम इस क्षेत्र में विदेशी सैनिक अड्डों की पूरी तरह और बिना शर्त समाप्ति के पक्ष में हैं तथा हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बनाये जाने के विचार का समर्थन करते हैं। पिछले नवम्बर में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के महासचिव कामरेड लियोनिद ब्रेज़नेव और भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा हस्ताक्षरित सोवियत-भारत संयुक्त घोषणा में इस स्थिति की पुनर्पुष्टि की गयी है।

"हिन्द महासागर में प्रवेश करने वाले सोवियत नौसैनिक जहाज़ों ने दूसरे देशों की जहाज़रानी के लिए कभी खतरा पैदा नहीं किया। उन्होंने तटवर्ती राज्यों की कभी नाकेबन्दी नहीं की और न ही कभी वहाँ अपने सैनिक उतारे। हिन्द महासागर में सोवियत संघ का न तो कोई नौसैनिक अड्डा है और न ही वह कोई अड्डा बना रहा है। इस प्रकार की कोई बात कभी नहीं हुई है—न तो पहले और न आज ही।

"पिछले कुछ दिनों से हिन्द महासागर में घटित हो रही घटनाओं ने हिन्द महासागर में तनाव के असली स्रोतों के सम्बन्ध में हर व्यक्ति की आँखें खोल दी हैं। इन घटनाओं ने यह प्रमाणित कर दिया है कि 'दो महाशक्तियों के बीच की प्रतिद्वन्द्विता' के सम्बन्ध में पेश की जाने वाली तथाकथित प्रस्थापना शुरू से ही एक मनगढ़न्त चीज़ तथा धोखे की टट्टी रही है।"

हिन्द महासागर जैसे जीवन्त प्रश्न के सम्बन्ध में सोवियत पक्ष जैसा ब्रेज़नेव

की भारत यात्रा के दौरान व बाद में व्यक्त किया गया, यह स्पष्ट करता है कि सोवियत संघ की शान्तिपूर्ण विदेश नीति दोनों देशों के जनगण के मौलिक हितों के अनुकूल है तथा एशिया व विश्व में शान्ति व स्थायित्व को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

5

दो स्वरों में समानता

भारत-सोवियत सम्बन्धों की विशेषता यह है कि यह न केवल पारस्परिक रूप से लाभदायक हैं, बल्कि विश्व के राजनीतिक वातावरण पर गहरा और सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। विश्व की परिषदों में तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर दोनों राज्यों के स्वरों में समानता पाई जाती है। दोनों देशों ने उन तत्त्वों के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द की जो राष्ट्रों की शांति को भंग करते हैं और मानव-अधिकारों तथा स्वतन्त्रता का दमन करते हैं।

भूमंडल के विभिन्न भागों की प्रमुख समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण में सन्निकटता या समानता, जो लियोनिद ब्रेजनेव की यात्रा के अन्त में जारी संयुक्त घोषणा में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में व्यक्त हुई है, कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। यह तो 26 वर्षों की उस साझेदारी की अभिव्यक्ति थी, जिसमें दोनों देशों ने पृथ्वी को भयावह संघर्षों से मुक्त करने के न्यायसंगत ध्येय की पूर्ति में हिस्सा लिया था। इस अध्याय में हम अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर भारत और सोवियत संघ के दृष्टिकोण की समानता का विवेचन करेंगे।

भारत और सोवियत संघ के बीच सम्बन्धों ने शान्ति क़ायम रखने में, नव-स्वतन्त्र देशों को उनकी आज़ादी सुदृढ़ करने में सहायता देने में तथा हर जगह प्रगति और जनवाद के ध्येय को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर दोनों देशों के रुख़ों मे प्रायः समानता ही नज़र आई है।

यह सर्वविदित है कि दोनों देशों में छठे दशक के आरम्भ में इन्डोचीन के युद्ध के फलस्वरूप जेनेवा सम्मेलन की सफलता के लिये निकट सहयोग के साथ कोरिया में भारत के रचनात्मक रुख़ तथा सोवियत संघ द्वारा संघर्षरत जनगण को दिये गये दृढ़ समर्थन ने टकराव का अन्त किया। 1956 में स्वेज़ संघर्ष के दौरान मिस्र के विरुद्ध फ्रांस, ब्रिटेन और इसरायल के आक्रमण का अन्त करने के लिये कंधा-से-कंधा मिलाकर काम किया था। दोनों ही देश संयुक्त राष्ट्र संघ में तथा इसके बाहर एशिया और अफ्रीका के उन जनगण की सफलता के लिये निकट सहयोग से काम करते हैं, जो अपनी आज़ादी और समानता के लिये तथा नस्ल-

वाद के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। पश्चिम एशिया में दोनों देश अरब राज्यों का समर्थन करते हैं और अधिकृत क्षेत्रों से इसरायली सैनिकों की वापसी की माँग करते हैं। वियतनाम की समस्या के प्रति भारत और सोवियत संघ ने असाधारण रूप से प्रशंसनीय कार्य किया क्यों कि दोनों देशों ने इंडोचीन में विदेशी सैनिकों की उपस्थिति की घोर भर्त्सना की।

भारत व सोवियत संघ के जनगण और सरकारों के बीच सिद्धान्तनिष्ठ मित्रता ने तथा अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की अनेक आधारभूत समस्याओं के प्रति इनके समान रुख ने भारत-सोवियत संधि का आधार तैयार किया। इस संधि ने दोनों देशों में, तमाम जनगण और राष्ट्रों में जाति और नस्ल का भेदभाव किये बिना, समानता के उदात्त आदर्श के प्रति अपनी निष्ठा से प्रेरित होकर उपनिवेशवाद और नस्लवाद के तमाम रूपों की निंदा की और इनके पूर्ण उन्मूलन के प्रयास में अपने संकल्प की पुनर्पुष्टि की। उन्होंने इस बात पर सहमति प्रकट की कि वे अन्य राज्यों के साथ सहयोग करेंगे ताकि वे इन लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें और उपनिवेशवाद और नस्लवादी आधिपत्य के विरुद्ध संघर्ष में जनगण की न्यायसंगत आकांक्षाओं का समर्थन कर सकें।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में विचारों की निकटता या समानता उन भारत-सोवियत संयुक्त वक्तव्यों में की गई थी जो सोवियत संघ के विदेश मंत्री आन्द्रेई ग्रोमिको की भारत-यात्रा के अन्त में 12 अगस्त, 1971 को तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी की सोवियत संघ-यात्रा के अन्त में 29 सितम्बर, 1971 को जारी किये गये थे। इन वक्तव्यों में दोनों पक्षों का यह विचार व्यक्त था कि इंडोचीन के मामलों में बाहरी हस्तक्षेप तत्काल समाप्त किया जाये। उनका यह मत था कि उस क्षेत्र के जनगण पर कोई भी अस्वीकार्य समझौता थोपने का प्रयास व्यर्थ होगा। उन्होंने दक्षिण वियतनाम की अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार के सात-सूत्री प्रस्ताव का ऐसे ठोस क़दम के रूप में स्वागत किया, जो शान्तिपूर्ण राजनीतिक समझौते का एक आधार हो सकता था।

पश्चिमी एशिया के सम्बन्ध में भारत और सोवियत संघ का यह मत था कि संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद द्वारा 22 नवम्बर, 1967 को पारित प्रस्ताव के कार्यान्वयन की अत्यधिक आवश्यकता है ताकि आक्रमण के अवशेष खत्म किये जा सकें और टिकाऊ, स्थायी और न्यायसंगत शांति स्थापित की जा सके।

उन्होंने घोषणा की कि वे आम और सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध में समझौता शीघ्र किये जाने के पक्ष में हैं। इसमें नाभिकीय व पारम्परिक अस्त्रों पर प्रतिबंध शामिल होंगे और यह समझौता प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के आधीन होना चाहिए।

दोनों पक्षों ने यह भी मत व्यक्त किया कि सभी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ,

जिनमें सीमा विवाद भी शामिल हों, शान्तिपूर्ण बातचीत के ज़रिए ही सुलझाये जायेंगे तथा उनके समाधान के लिये बलप्रयोग या बलप्रयोग की धमकी नहीं दी जानी चाहिए।

सरदार स्वर्णसिंह की 3 से 5 अप्रैल, 1972 तक सोवियत संघ की यात्रा के अन्त में जारी वक्तव्य में इस बात पर पुनः ज़ोर दिया गया कि सोवियत संघ और भारत ताल-मेल और पारस्परिक समझ की भावना के साथ काम करते हुए "सैनिक तनाव के अड्डों को खत्म करने, राष्ट्रों के स्वतंत्र और स्वाधीन विकास को सुनिश्चित करने, समानता के आधार पर राज्यों के शान्तिपूर्ण सहयोग को विकसित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की नींवों को मज़बूत करने के उद्देश्य के लिये अपने सक्रिय प्रयत्न जारी रखेंगे।"

इंडोचीन के सन्दर्भ में भारत और सोवियत संघ की नीतियों की समीक्षा करने पर दोनों देशों के निकट अथवा समान दृष्टिकोण को आसानी से समझा जा सकता है।

1971 में इंडोचीन पर हिरोशिमा पर गिराये गये अणुबम जैसे 85 बमों के बराबर विस्फोटक सामग्री गिराई गई थी, जिससे उत्तरी वियतनाम तथा दक्षिणी वियतनाम में हज़ारों नागरिक मर गए, झुलस गए अथवा सदा के लिए अपाहिज हो गए। यह बहुत हृदय-विदारक तथ्य है कि 1965 और 1971 के बीच अमरीकियों ने इंडोचीन पर लगभग 130 लाख टन घातक विस्फोटक सामग्री गिराई थी।

1971 के खत्म होते-होते 26 दिसम्बर को अमरीका ने उत्तरी वियतनाम पर अपने हमले और तेज़ कर दिए। बीसियों अमरीकी जहाज़ों ने बार-बार उस प्रभुसत्ता सम्पन्न देश की वायु-सीमा का उल्लंघन किया और उस पर निर्दयता पूर्वक बम गिराये।

इस अमानुषिक कुकृत्य पर सोवियत संघ और भारत की क्या प्रतिक्रिया हुई?

"प्राव्दा" के 30 दिसम्बर, 1971 के अंक में सोवियत सरकार का एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें सोवियत सरकार ने इंडोचीन प्रायद्वीप में खतरनाक रूप धारण करती परिस्थिति को 'अत्यन्त गम्भीरता' से देखा तथा इसकी 'घोर निन्दा' की। वक्तव्य में यह भी घोषणा की कि सोवियत संघ वियतनाम जनवादी जनतंत्र की प्रभुसत्ता और स्वतंत्रता पर हर प्रकार के अतिक्रमण को पीछे धकेलने के लिये उसे आवश्यक सहायता देता रहेगा।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने नव वर्ष की पूर्व वेला पर 'तास' से एक इंटरव्यू में कहा कि "वर्ष के अन्तिम दिनों में अमरीका के व्यापक हवाई हमलों का पुनः जारी होना दक्षिण-पूर्व एशिया में शान्ति के लिए शुभ नहीं है" तथा "हम वियतनाम,

कम्बोडिया और लाओस की वीर जनता को नहीं भूल सकते जो अभी भी अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही है।"

7 जनवरी, 1972 को भारत की सरकार ने जनवादी वियतनाम के साथ अपने राजनयिक सम्बन्धों को राजदूत स्तर पर स्थापित करने की घोषणा की, जो वियतनाम की वीर जनता के साथ एकजुटता व समर्थन की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी।

वियतनामियों के अजेय साहस व अदम्य संकल्प के कारण अमरीकियों को कई जगह मुँह की खानी पड़ी। 1972 में दक्षिण वियतनाम की मुक्ति शक्तियों ने प्रत्याघात किया और क्वांग त्री के अलावा अनेक स्थानों पर महत्वपूर्ण सफलताएँ हासिल कीं। दक्षिण वियतनाम में इस करारी पराजय के कारण तथा और अधिक भयावह परिणामों की आशंका से भयभीत होकर 8 मई को निक्सन ने उत्तरी वियतनाम पर व्यापक बमबारी की घोषणा से और उत्तरी वियतनाम पर नौसैनिक नाकेबन्दी थोप कर युद्ध को वीभत्स रूप प्रदान किया, किन्तु कुछ ही दिनों में यह नाकेबन्दी व बम्बारी असफल सिद्ध हुई।

9 मई को 'तास' समाचार एजेंसी ने अमरीका द्वारा उसके 'नग्न आक्रमण के कुकृत्यों' तथा 'अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून की धाराओं के उल्लंघन' की निन्दा की।

सरदार स्वर्णसिंह ने भी लोकसभा में 10 मई को अपने वक्तव्य में कहा :

"मानव उत्पीड़न के प्रति कोई भी संवेदनशील व्यक्ति इस स्थिति के प्रति उदासीन नहीं हो सकता। इस विनाशकारी कृत्य को किसी प्रकार उचित नहीं ठहराया जा सकता। इससे न तो शान्ति के ध्येय को बल मिलेगा और न ही वे लक्ष्य प्राप्त किये जा सकेंगे जो राष्ट्रपति निक्सन ने हाल की सैनिक कार्रवाई की आज्ञा के अपने वक्तव्य में कहे थे।"[1]

विश्व के शान्तिप्रिय जनगण द्वारा इस कुकृत्य की विश्वव्यापी निन्दा ने निक्सन द्वारा 13 मई को अमरीकी नौसेना द्वारा की गई नाकेबन्दी को हटाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

18 दिसम्बर, 1972 को संयुक्त राज्य अमरीका ने जनवादी वियतनाम पर पुनः व्यापक बमबारी जारी कर दी। हनोई व हाइफ़ोंग तथा अन्य नगरों पर भीषण रूप से हवाई हमले किये गए। पहली बार बी-52 बमवर्षकों का प्रयोग किया गया। यह बमबारी 30 दिसम्बर तक जारी रही। हनोई व हाईफ़ोंग पर कुल मिलाकर 70,000 बम गिराये गए। 12 दिनों में 81 अमरीकी विमान जिनमें 34 B-52 के रणनीतिक बमवर्षक शामिल थे, मार गिराये गए।

सरदार स्वर्णसिंह ने 19 दिसम्बर को संसद में घोषणा की :

1. पैट्रिअट, 11 मई, 1972.

"विश्व इस बात का इन्तज़ार कर रहा था कि क्रिसमस खुशहाली और शांति का समाचार लायेगा, (मगर) यह तो नये विनाश और कटुता का समाचार लाया है।

"भारत की सरकार को घटनाओं के दुःखद रूप धारण कर लेने से गहरी निराशा हुई है तथा इसे आशा है कि समझदारी पैदा होगी, कि तमाम बमबारी और युद्ध की कार्रवाइयाँ तत्काल रोक दी जाएँगी, कि पेरिस वार्ताओं की जिनके बारे में हमारा विश्वास है उन्हें रोका नहीं गया है, प्रगति को रोकने के लिए स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं होगा तथा वियतनाम में एक शांति समझौते पर बिना किसी देर के शीघ्र ही हस्ताक्षर किए जायेंगे।"

लियोनिद ब्रेझनेव ने सोवियत संघ के गठन की पचासवीं जयन्ती से सम्बन्धित संयुक्त समारोह सभा में अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए 21 दिसम्बर, 1972 को यह घोषणा की :

"अब तक सबके सामने यह स्पष्ट हो चुका है कि वियतनाम में अमरीकी सैनिक दुस्साहस असफल हो चुका है। और कोई भी नये नृशंस अपराध वियतनाम की वीर जनता के संकल्प को तोड़ नहीं सकते, न ही उसके न्यायोचित मुक्ति संघर्ष में हर सम्भव समर्थन और सहायता प्रदान करने के उसके मित्रों के संकल्प को डिगा सकते हैं ... हमने इंडोचीन में युद्ध का अड्डा समाप्त करने के लिये कार्य करना सोवियत संघ की विदेश नीति का केन्द्रीय लक्ष्य हमेशा माना है। इस लिए न्यायपूर्ण शान्ति समाधान के लिये अपने वियतनामी मित्रों के प्रयासों में हम उनकी सर्वतोमुखी सहायता करते हैं।"

इसी रिपोर्ट मे लियोनिद ब्रेज़नेव ने यह भी स्पष्ट किया कि अमरीका के साथ सोवियत संघ के सम्बन्धों का भविष्य "बहुत कुछ तत्कालिक भविष्य के घटनाक्रम पर और ख़ासकर इस बात पर निर्भर करेगा कि वियतनाम में युद्ध बन्द करने का प्रश्न कौन सा रुख लेता है।"

अन्ततः, वियतनामी जनता के जुझारू और साहसपूर्ण संघर्ष के कारण तथा स्वतन्त्रता प्रेमी देशों, विशेषतया सोवियत संघ द्वारा उनके ध्येय को दिये गए समर्थन के कारण 27 जनवरी, 1973 को वियतनाम में युद्ध समाप्त करने और शान्ति की पुनःस्थापना सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते पर जनवादी जनतंत्र की सरकार, सैगोन सरकार, दक्षिण वियतनाम जनतंत्र की अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार और अमरीका की सरकार ने हस्ताक्षर किए।

लियोनिद ब्रेज़नेव, निकोलाई पोदगोर्नी और अलेक्सेई कोसीगिन ने 27 जनवरी, 1973 को जनवादी वियेतनाम जनतंत्र के नेताओं के नाम एक बधाई सन्देश भेजा।

यह बहुत दिलचस्प बात है कि जब पेरिस में इस समझौते पर हस्ताक्षर हो

रहे थे, तो लाओस के प्रधानमंत्री राजकुमार सुवन्ना फूमा भारत की चार दिन की यात्रा कर रहे थे। उनकी यात्रा के अन्त में 29 जनवरी, 1973 को जारी किये गए संयुक्त वक्तव्य में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर होने का स्वागत किया था तथा यह आशा व्यक्त की थी कि इससे न केवल वियतनाम में, बल्कि लाओस और कम्बोडिया के पड़ोसी देशों में शान्ति स्थापित हो सकेगी।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने राजकुमार सुवन्ना फूमा को विश्वास दिलाया था कि भारत की यह हार्दिक इच्छा है कि वह लाओस में टिकाऊ शान्ति की पुनः-स्थापना में तथा इसकी स्वतंत्रता, प्रभुसत्ता और तटस्थता की रक्षा करने में सहायता करे।

अमरीका इस समझौते का निरन्तर बड़े पैमाने पर उल्लंघन करता रहा। फलतः, वियनाम-वार्ताओं का नया दौर अनिवार्य हो गया। 13 जून, 1973 को अमरीका, उत्तरी वियतनाम, दक्षिणी वियतनाम और दक्षिण वियतनाम की अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार ने पेरिस में एक नये शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसके अनुसार वियतनाम में तनाव में और अधिक कमी करने के लिये स्थितियाँ पैदा की गई। इस सम्बन्ध में भारत के विचार उस भारत-कनाडा संयुक्त विज्ञप्ति में व्यक्त किये गए थे जो श्रीमती इन्दिरा गांधी की कनाडा-यात्रा के बाद 24 जून, 1973 को जारी की गई थी। इस वक्तव्य में दोनों प्रधान मंत्रियों ने इन समझौतों का कड़ाई से पालन करने की आवश्यकता पर बल दिया था जिससे उस क्षेत्र में टिकाऊ शान्ति स्थापित हो सके। बाद में बेलग्रेड में भाषण करते हुए श्रीमती इन्दिरा गांधी ने वियतनाम सम्बन्धी समझौतों का पुनः स्वागत किया लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि उस क्षेत्र में तब तक वास्तविक शान्ति नहीं हो सकती "जब तक लाओस और कम्बोडिया भी युद्ध-विराम की सीमा में नहीं लाये जाते और विदेशी सैनिक वापस नहीं लौटाये जाते।"

इस विज्ञप्ति के सम्बन्ध में सोवियत संघ ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये।

वियतनामी जनता के 'स्वतंत्रता व स्वाधीनता' के संघर्ष में भारतीय जनता के 'व्यापक समर्थन' के प्रति धन्यवाद व्यक्त करते हुए जनवादी वियतनाम जनतंत्र के प्रधानमंत्री फ़ान व्मन ज़ोंग ने 9 जुलाई के विशेष इंटरव्यू में विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग के लिये वियतनाम-भारत एकजुटता का आह्वान किया।

लियोनिद ब्रेज़नेव के मतानुसार "साम्राज्यवादी आक्रमण के विरुद्ध संघर्ष में सोवियत संघ तथा तमाम शान्तिप्रेमी शक्तियों, जिनमें भारत शामिल है, के समर्थन ने" वियतनामियों की विजय में प्रमुख भूमिका अदा की।

लाओस के प्रश्न पर भी भारत और सोवियत संघ के समान विचार थे। दोनों देशों ने लाओस की, जो 1954 से साम्राज्यवादी कुचक्रों के विरुद्ध वीरतापूर्वक लड़ता आ रहा है, शान्तिप्रिय जनता के न्यायसंगत ध्येय का समर्थन किया है।

दोनों देशों की शान्तिपूर्ण विदेश नीति ने दक्षिण-पूर्व एशिया की स्थिति में तनाव कम करने में जीवन्त भूमिका अदा की है। फ़रवरी 1973 में, जब लाओस में युद्ध समाप्ति से सम्बन्धित युद्ध-विराम सम्बन्धी तथा राजकुमार सुवन्ना फ़ूमा और पाथेट लाओ के प्रतिनिधि फ़ूमी वोंगविचित द्वारा वियन्तीएन में नई राष्ट्रीय सरकार सम्बन्धी समझौता किया गया, तो श्रीमती इन्दिरा गांधी ने उसका स्वागत किया। राजकुमार सुवन्ना फ़ूमा को भेजे अपने सन्देश में श्रीमती गांधी ने यह आशा व्यक्त की कि इससे लाओस की जनता के लिए टिकाऊ शान्ति का सूत्रपात होगा और देश के तीव्र पुनर्निर्माण का पथ प्रशस्त होगा। इसके अलावा इसने ऐसी सम्भावनायें पैदा की हैं, जिनसे किसी बाहरी हस्तक्षेप के बिना वे अपने मामले सुलझा सकते हैं।

इस समझौते ने, जैसी कि 1962 के जेनेवा समझौतों में कल्पना की गई थी, शान्तिपूर्ण, तटस्थ, स्वतंत्र, जनवादी, संयुक्त और समृद्ध लाओस की स्थापना का पथ प्रशस्त किया।

सोवियत जनता व सरकार ने भी इसका मातृभूमि की स्वाधीनता व स्वतंत्रता के संघर्ष में लाओस के देशभक्तों की महान और शानदार विजय के रूप में स्वागत किया। वियतनाम और लाओस में युद्ध की समाप्ति इंडोचीन की और समग्र रूप से दक्षिण-पूर्व एशिया की स्थिति के सामान्यीकरण की ओर एक महत्त्वपूर्ण क़दम था।

यदि हम फ़रवरी 1973 की बाद के घटनाओं का विवेचन करें तो यह पता चलेगा कि साम्राज्यवादियों व उनके पिछलग्गुओं ने अपने हथियार नहीं डाले। इस समझौते के बाद भी अमरीकी वायु सेना लाओस पर हवाई हमले करती रही। लियोनिद ब्रेज़नेव, निकोलाई पोदगोर्नी व अलेक्सेई कोसीगिन ने राजकुमार सूफ़ानोवोंग को एक तार में यह आश्वासन दिया कि सोवियत संघ लाओस के देशभक्तों का, लाओस की तमाम जनता का उनके राष्ट्रीय हितों व आकांक्षाओं की पूर्ति के न्यायसंगत संघर्ष में, निरन्तर साथ देता रहेगा।

14 सितम्बर, 1973 को लाओस के देशभक्तिपूर्ण मोर्चे व वियन्तीएन की सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा देश में राष्ट्रीय सौहार्द और शान्ति-पुनस्स्थापना के समझौते पर हस्ताक्षर किए।

एक वक्तव्य में भारत की सरकार ने इस समझौते का 'एक ऐतिहासिक घटना' के रूप में स्वागत किया, क्योंकि इसने लाओस में एक दशक से अधिक

समय से विद्यमान अनिश्चितता का अन्त किया था।

वक्तव्य में आगे कहा गया : "भारत ने लाओस की स्वतंत्रता, तटस्थता, एकता, प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता में दृढ़ विश्वास व्यक्त किया था और समर्थन किया था। भारत की सरकार की यह हार्दिक आशा है कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय तथा 1962 में लाओस के सम्बन्ध में जेनेवा सम्मेलन में भाग लेने वाले देश विशेष रूप से इस प्रलेख का समर्थन करेंगे और लाओस में शान्ति व स्थायित्व के ध्येय मे योगदान करेंगे।"

सोवियत संघ में भी इस घटनाक्रम पर प्रसन्नता व्यक्त की गयी।

कम्बोडिया की जनता को भी भारत व सोवियत संघ का समर्थन बराबर मिलता रहा।

सरदार स्वर्ण सिंह ने 20 अक्टूबर, 1973 को नई दिल्ली में आयोजित एक राष्ट्रीय कन्वेशन में भाषण करते हुए यह घोषणा की थी कि भारत का विश्वास है कि पेरिस समझौता और लाओस सम्बन्धी हाल का समझौता सही दिशा में क़दम थे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया था कि भारत-कम्बोडिया में सिंहानुक-शक्तियों का समर्थक है और चाहता है कि युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाये।

सिंहानुक की अपदस्थ सरकार को मान्यता देने की सोवियत सरकार की घोषणा ने स्वाधीनता व जनवाद के लिये सोवियत चिन्ता की पुनर्पुष्टि की।

लियोनिद ब्रेज़नेव भी भारत-यात्रा के बाद जारी की गई भारत-सोवियत संयुक्त घोषणा में दोनों देशों ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में इंडोचीन के सम्बन्ध में अपने समान विचार व्यक्त किये। उनका विश्वास था कि वियतनाम में युद्ध-समाप्ति और शान्ति-पुनस्स्थापन सम्बन्धी 27 जनवरी, 1973 के पेरिस समझौते के आधार पर वियतनाम में शान्ति-पुनस्स्थापना में तथा लाओस में राष्ट्रीय सौहार्द लाने और शान्ति-पुनस्स्थापन के समझौते पर हस्ताक्षर होने से एशिया में और समस्त विश्व में परिस्थिति में सुधार के लिए तथा अन्य महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। सोवियत संघ और भारत का यह दृढ़ विचार था कि सभी सम्बन्धित पक्ष उपरोक्त समझौतों को अडिग भाव से और पूर्णरूप से क्रियान्वित करें तथा कम्बोडिया की जनता के राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर कम्बोडिया की समस्या का शीघ्र और न्यायपूर्ण हल निकाला जाये।

पश्चिमी एशिया की समस्या पर भारत और सोवियत संघ की स्थितियों में सन्निकटता और अधिक स्पष्ट हुई। 1956 के स्वेज़ संघर्ष के समय से 1967 के इसरायल के नग्न आक्रमण तक दोनों देशों ने अरबों की सहायतार्थ और साम्राज्यवादी कुचक्रों का पर्दाफ़ाश करने के लिए अनेक क़दम उठाये। दोनों

देशों ने यह बार-बार कहा कि साम्राज्यवादियों के पृष्ठपोषण के कारण इसरायल इस क्षेत्र में विस्फोटक स्थिति पैदा कर रहा है।

दोनों देशों ने यह बार-बार स्पष्ट किया कि इसरायल सुरक्षा परिषद् के नवम्बर 1967 के प्रस्ताव का उल्लंघन कर रहा है, यारिंग मिशन की पीठ में छुरा घोंप रहा है तथा पश्चिम एशिया में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव कुर्त वाल्ड हाइम की यात्रा के दौरान इसरायल का रुख नकारात्मक रहा है।

जुलाई 1973 में सुरक्षा परिषद में पश्चिमी एशिया की स्थिति पर विचार किया गया। अमरीका ने आठ गुटनिरपेक्ष देशों द्वारा पेश किये गए प्रस्ताव के प्रारूप पर 'वीटो' का प्रयोग किया। सोवियत संघ तथा भारत द्वारा सशक्त रूप से समर्थित प्रस्ताव सुरक्षा परिषद का सुविदित प्रस्ताव सं० 242 था, जिसमें विशेष रूप से अधिकृत अरब क्षेत्रों से इसरायल की वापसी का प्रावधान था।

पश्चिम एशिया में राजनीतिक समझौते के अभाव के कारण वहाँ 6 अक्टूबर, 1973 को एक बार पुनः युद्ध की ज्वालाएँ भभक उठीं। सोवियत सरकार ने 7 अक्तूबर को एक वक्तव्य में यह ऐलान किया :

"मध्य-पूर्व में घटनाओं के मौजूदा विकास का और उनके दुष्परिणामों का सम्पूर्ण और पूरी तरह उत्तरदायित्व इसरायल पर तथा उन बाहरी प्रतिक्रियावादी क्षेत्रों पर है, जो इसरायल की आक्रमणकारी आकांक्षाओं को निरन्तर प्रोत्साहन प्रदान करते हैं।"

भारत की सरकार ने भी 7 अक्तूबर, 1973 को एक वक्तव्य जारी किया, जिसमें पश्चिम एशिया में टकराव की स्थिति पैदा करने के लिए इसरायल को जिम्मेदार ठहराया गया तथा अरबों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई।

सरदार स्वर्ण सिंह ने 10 अक्तूबर, 1973 को संयुक्त राष्ट्र से लौटने पर पुनः भारत सरकार के पक्ष की पुनर्पुष्टि की। उन्होंने घोषणा की कि इसरायल द्वारा निरन्तर भूमि का हथियाना ही इस दुर्भाग्यपूर्ण युद्ध के प्रारम्भ होने का प्रमुख कारण था।

इसरायल व मिस्र के बीच 17 दिन के युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के 22 अक्तूबर, 1973 के प्रस्ताव (सं० 338) के आधार पर वहाँ युद्ध-विराम हुआ।

विश्व की शान्तिप्रिय जनता ने सुरक्षा परिषद के इस प्रस्ताव का स्वागत किया। भारत की सरकार ने यह मत व्यक्त किया कि प्रस्ताव की शर्तें इस विषय पर भारत के विचारों के अनुकूल हैं। वक्तव्य में इस बात पर बल दिया गया कि इसरायल द्वारा अरब क्षेत्रों पर निरन्तर आधिपत्य मौजूदा संघर्ष का आधारभूत कारण था। "इस अधिकृत क्षेत्र को तत्काल आवश्यकता के रूप में खाली किया जाना चाहिए जिससे शान्ति के साथ-साथ न्याय उपलब्ध हो सके।"

लेकिन स्थिति तनावपूर्ण बनी रही। मिस्र ने युद्ध-विराम का पालन किया पर इसरायल ने उसका उल्लंघन करने के साथ-साथ क्षेत्रीय आधिपत्य के विस्तार के अनेक प्रयत्न किये। इसी बीच निक्सन प्रशासन ने तमाम विश्व में अपनी फ़ौजों को सतर्क होने की घोषणा की जिससे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य के मार्ग में बाधाएँ पैदा हो गई। अतः, युगोस्लाविया के समर्थन से भारत ने 27 अक्तूबर, 1973 को यह-प्रस्ताव पेश किया कि संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को पश्चिम एशिया के भयानक संघर्ष को रोकने के लिए अस्थायी क़दम के रूप में साइप्रस से अतिक्ति फ़ौज भेजने का अधिकार दिया जाए।

दूसरे प्रस्ताव में भारत के स्थायी प्रतिनिधि ने परिषद के अध्यक्ष, आस्ट्रेलिया के सर लारेंस मेकेंटर तथा महासचिव से पक्षों को तार द्वारा अपील भेजने का आग्रह किया, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय रेड क्रास के मानवतापूर्ण कार्यों में पूर्ण सहयोग के लिए कहा जाये।

यह ऐसा अनोखा अवसर था जबकि परिषद के तमाम स्थायी सदस्यों—सोवियत संघ, अमरीका, चीन, फ्रांस व ब्रिटेन ने भारतीय प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया।

लियोनिद ब्रेज़नेव ने अपनी भारत-यात्रा के दौरान यह विचार व्यक्त किया कि मध्य-पूर्व में हाल के हफ़्तों में घटित होने वाली घटनाओं ने वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की पेचीदगी का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। मध्य-पूर्व आज के संसार में बहुत सी परस्पर विरोधी शक्तियों की परस्पर क्रिया का केन्द्र-विन्दु बन गया है।

उन्होंने प्रतिक्रियावादी शक्तियों के इस आरोप का खण्डन किया कि सोवियत संघ का 'मध्यपूर्व में कोई स्वार्थपूर्ण हित' है।

उन्होंने मध्यपूर्व के सम्बन्ध में भारत द्वारा अपनायी गयी स्थिति की बहुत प्रशंसा की, जिसमें दृढ़तापूर्वक और बिना लाग-लपेट के अरब गणराज्य के न्यायोचित ध्येय का समर्थन किया गया था। उन्होंने घोषणा की कि भारत ने जो स्थिति अपनायी थी वह कोई संयोग नहीं था। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भारत की यह स्थिति "शान्ति के ध्येय और जनगण के अधिकारों के लिए सक्रिय रूप से संघर्षरत शान्तिप्रिय राज्य के रूप में आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उसकी आम भूमिका की द्योतक है।"

संयुक्त घोषणा में भारत व सोवियत संघ दोनों ने पश्चिम एशिया की स्थिति पर समान विचार व्यक्त किये। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् के 22 अक्तूबर, 1973 के प्रस्ताव सं० 339 का स्वागत करते हुए उन्होंने कहा कि पश्चिम एशिया के संघर्ष का शान्तिपूर्ण राजनीतिक हल सुरक्षा परिषद के 22 नवम्बर, 1967 के प्रस्ताव को तत्काल व्यावहारिक रूप दिये जाने से किया जा सकता है, जो इस

क्षेत्र के जनगण के लिए सुरक्षा व आदर के लिए अत्यन्त विश्वसनीय गारंटी होगी। उनके इस सर्वविदित मत में तनिक भी अन्तर नहीं था कि इसरायल द्वारा अरब क्षेत्रों की पूर्ण मुक्ति के बिना तथा फ़िलस्तीन की अरब जनता के वैध अधिकारों को सुनिश्चित किये बिना टिकाऊ शान्ति कल्पना मात्र है। दोनों पक्षों ने अरब राज्यों व जनगण के न्यायोचित ध्येय को 'सर्वतोमुखी समर्थन प्रदान करना जारी रखने' की घोषणा की।

सोवियत संघ व अमरीका के बीच सम्बन्धों के सामान्यीकरण की प्रक्रिया एक ऐसी समस्या थी जिस पर इस देश में प्रारम्भ में कुछ शंकाएँ व ग़लत-फ़हमियाँ पैदा हो गई थीं।

क्या विश्व की दो प्रमुख शक्तियों के बीच तनाव-शैथिल्य होना शक्ति-सन्तुलन की पुरानी मान्यता की प्रस्थापना का तथा प्रभाव-क्षेत्र क़ायम करने का एक अन्य प्रयास था ? क्या इसका उद्देश्य भारत जैसे विकासशील देशों के हितों की उपेक्षा करना था ? भारत में इस प्रकार की कुछ शंकाएँ व्यक्त की गईं थीं।

जून 1973 में, जब कि वाशिंगटन में शिखरवार्ता जारी थी, लियोनिद ब्रेज़नेव ने यह स्पष्ट कर दिया था कि उनका देश किसी भी देश के हितों की उपेक्षा कभी नहीं होने देगा। सीनेट की विदेश-सम्बन्धों की समिति के सदस्यों की सभा में उन्होंने 19 जून, 1973 को यह ऐलान किया था कि अमरीका व सोवियत संघ के बीच समझ किसी भी तीसरे देश के हितों को हानि पहुँचाने के स्थान पर, आम स्थिति पर अत्यन्त अनुकूल प्रभाव डालेगी, अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में सुधार लायेगी और शान्ति व अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को सुदृढ़ बनायेगी।

लियोनिद ब्रेज़नेव की अमरीका-यात्रा के राजनीतिक व व्यावहारिक परिणामों का सम्पूर्णतः और पूरी तरह अनुमोदन करते हुए सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय समिति के पोलिटब्यूरो, सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष-मण्डल और सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद् ने यह ऐलान किया कि "हम अपने मित्रों और मित्र-राष्ट्रों के साथ—समाजवादी समुदाय के साथ—अपने सम्बन्ध सुदृढ़ बनाते रहेंगे। हम उन देशों के साथ अपने सम्बन्ध-सूत्र और सम्पर्क विकसित करते रहेंगे, जिन्होंने अपने को औपनिवेशिक जुए से मुक्त कर लिया है, उन जनगण को सहायता देते रहेंगे, जो शान्ति, राष्ट्रीय मुक्ति, जनवाद और समाजवाद के लिए लड़ रहे हैं। सोवियत संघ पहले की तरह ही आक्रामक साम्राज्यवादी शक्तियों के किसी भी षड्यंत्र का दृढ़तापूर्वक जवाब देता रहेगा, उन सबों को मुँहतोड़ जवाब देता रहेगा जो तनाव-शैथिल्य का विरोध करते

हैं और शीत-युद्ध व हथियारों की होड़ की ओर वापस जाना चाहते हैं तथा जनगण के बीच शत्रुता और बैर के बीज बोना चाहते हैं।"[1]

अपनी सोवियत संघ-यात्रा के दौरान जब कांग्रेस अध्यक्ष डॉ० शंकरदयाल शर्मा सोवियत संघ के अध्यक्ष अलेक्सेई शितिकोव तथा जातीयताओं की सोवियत की अध्यक्ष यादगार नसरीद्दीनोवा से 2 जुलाई, 1973 को मिले तो उन्हें विश्वास दिलाया गया कि सोवियत संघ हमेशा भारत-सोवियत सन्धि में प्रतिपादित मित्रता व सहयोग के सिद्धान्तों का पालन करेगा तथा भारत के साथ अपनी मित्रता व एकजुटता के सिद्धान्तों से कभी विचलित नहीं होगा।

सोवियत संघ के इस प्रकार के आश्वासनों व उत्तरों, व्यावहारिक राजनीतिक कार्रवाइयों तथा हस्ताक्षरित दस्तावेज़ों के अध्ययन ने भारतीय नेताओं पर तनाव-शैथिल्य के सकारात्मक पक्षों को स्पष्ट कर दिया।

भारत के तत्कालीन प्रतिरक्षा मंत्री श्री जगजीवन राम ने 6 जुलाई, 1973 को अपनी सोवियत संघ-यात्रा की पूर्वसंध्या पर लियोनिद ब्रेज़नेव की अमरीका यात्रा को 'बहुत महत्त्वपूर्ण' बताया और कहा कि वार्ताओं के परिणामों ने 'विश्व की राजनीतिक स्थिति में आमूल सुधार लाने में योगदान' किया है। उन्होंने लियोनिद ब्रेज़नेव के साहस व उनकी राजनीतिक समझ की प्रशंसा करते हुए कहा कि सोवियत नेतागण तमाम शान्तिप्रिय मानवजाति तथा हमारे भूमण्डल के तमाम जनगण की बधाई के पात्र हैं, क्योंकि उन्होंने जो किया है वह शान्ति व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, तमाम राष्ट्रों की खुशहाली व समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होने नाभिकीय युद्ध को रोकने से सम्बद्ध सोवियत-अमरीकी समझौते को 'तमाम विश्व में शान्ति क़ायम रखने की प्रमुख घटना' की संज्ञा दी।

डॉ० शंकरदयाल शर्मा ने भी मास्को में 11 जुलाई, 1973 को संवाददाताओं से इंटरव्यू में ब्रेज़नेव-निक्सन शिखर वार्ता के परिणामों का स्वागत किया।

सोवियत संघ में भारत के भूतपूर्व राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन ने कहा :

"ब्रेज़नेव-निक्सन समझौते के परिणामस्वरूप नाभिकीय युद्ध का खतरा अब कम हो गया है। वे न केवल अपने दोनों देशों के बीच, बल्कि किसी अन्य देश के साथ भी नाभिकीय युद्ध न करने के प्रति प्रतिबद्ध हुए हैं। अब शान्ति पारस्परिक भय सन्तुलन पर आधृत न होकर नाभिकीय युद्ध के कारणों को रोकने के पारस्परिक समझौते पर आधृत है।"

लियोनिद ब्रेज़नेव ने अपनी भारत यात्रा के दौरान संसद के दोनों सदनों को 29 नवम्बर, 1973 को सम्बोधित करते हुए सार्वभौमिक शान्ति के लिए

1. सोवियत दर्पण, खण्ड 8, सं० 32, 14 जुलाई, 1973

सोवियत-अमरीकी सम्बन्धों के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा :

"पिछले दो वर्षों के दौरान सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका के बीच सम्बन्धों में बेहतरी की दिशा में जो परिवर्तन आये हैं, वे संसार की पूरी परिस्थिति में अधिक स्थिर शान्ति और सुरक्षा की दिशा में स्थायी परिवर्तन के लिए निस्सन्देह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन परिवर्तनों का मूल तत्त्व—अन्य देशों के लिए जो बात प्राथमिक महत्त्व रखती है उस अर्थ में—यह है कि दो सबसे ज़्यादा मज़बूत शक्तियों ने, जिनमें से एक समाजवादी और दूसरी पूँजीवादी शक्ति है, पारस्परिक रूप से एक अनिवार्य राज्यीय क़ानून के रूप में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धान्त को अपने बीच सम्बन्धों का आधार मान लिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी विदेश नीतियों को इस प्रकार संचालित करने का दायित्व लिया है जिससे कि नाभिकीय युद्ध का छिड़ना रोका जा सके।

"मेरा विश्वास है इस पर बहस करना आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार का समझौता नये विश्व युद्ध को रोकने में दिलचस्पी रखने वाले संसार के सभी जनगण के लिए फ़ायदेमन्द है। अमरीका के साथ सम्बन्धों में सुधार लाने के लिए ये क़दम उठाकर सोवियत संघ ने अपनी शान्तिपूर्ण समाजवादी विदेश नीति के सुविदित सिद्धान्तों के अनुसार कार्य किया है। हम इस तथ्य की समुचित सराहना करते हैं कि इस मामले में संयुक्त राज्य अमरीका के नेतृत्व ने राजनीतिक यथार्थवादिता, दूरदर्शिता और युग के तक़ाज़ों के प्रति जागरूकता का परिचय दिया।

"ऐतिहासिक विकास में आने वाले सभी महत्त्वपूर्ण मोड़ों की तरह ही सोवियत संघ और अमरीका के बीच सम्बन्धों में यह मोड़ आसानी से नहीं आ रहा है। यह विभिन्न शक्तियों के बीच संघर्ष की हालतों में तथा कुछ टेढ़े-मेढ़े रास्तों और रुकावटों के साथ आ रहा है। हम यह साफ़-साफ़ देखते हैं कि पश्चिमी शक्तियों के राजनीतिक-सैनिक गुट के कुछ क्षेत्र तथा खुद अमरीका के कुछ क्षेत्र सोवियत संघ और अमरीका के बीच स्थायी शान्ति और परस्पर लाभदायक सहयोग के सम्बन्धों की स्थापना को अपने लिए अवांछनीय समझते हैं और वे हर प्रकार से इसका विरोध करने का प्रयास कर रहे हैं। यह भी ज्ञात है कि अमरीका में ऐसे क्षेत्र बहुत सक्रिय हैं। किन्तु हमारा गहरा विश्वास है कि उनके कार्यकलाप का अमरीकी जनता के हितों से कोई वास्ता नहीं है।

"किन्तु सोवियत संघ और अमरीका के बीच सम्बन्धों को सामान्य तथा स्वस्थ पथ पर प्रेरित करने की दृष्टि से 1972 और 1973 की सोवियत-अमरीका शिखर-वार्ताओं के फलस्वरूप जो कुछ हासिल किया गया है, वह निस्सन्देह सोवियत संघ और अमरीका के जनगण तथा सार्वत्रिक शान्ति दोनों के मूलभूत और दीर्घकालिक हितों से मेल खाता है। प्रिय मित्रो, मुझे यह साफ़-साफ़ कहने

की इजाज़त दीजिए कि सोवियत संघ के हम लोगों का यह विश्वास है कि रचनात्मक नीति की इस शान्तिपूर्ण उपलब्धि को मिटाने में कोई भी सफल नहीं होगा।

"सोवियत संघ तनाव-शैथिल्य और शान्तिपूर्ण सहयोग के निर्धारित मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए पूर्णतः कृतसंकल्प है। ज़ाहिर है कि हम यह मान कर चलते हैं कि अमरीकी पक्ष भी इसी प्रकार कार्य करेगा।"

यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि भारत-सोवियत संयुक्त घोषणा में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सोवियत संघ व अमरीका के बीच तनाव-शैथिल्य का "विश्व में तनाव कम करने की दिशा में एक क़दम" के रूप में "स्वागत" किया। इस दिशा में उन्होंने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के महासचिव के प्रयत्नों का उच्च मूल्यांकन किया और यह आशा प्रकट की कि "विश्व के अन्य भागों में भी तनाव-शैथिल्य का प्रसार होगा तथा मानवजाति के लिए खतरा उत्पन्न करने वाली नाभिकीय हथियारों की होड़ समाप्त होगी।"

शान्ति-प्रतिबद्ध भारत ने भूमण्डल के तमाम भागों में तनाव में कमी का स्वागत किया। और जब तनाव में कमी की प्रक्रिया यूरोप में आरम्भ हुई तो भारत का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था।

मानवजाति की नियति में यूरोप का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ से दो विश्व युद्धों की शुरूआत हुई थी, और द्वितीय विश्वयुद्ध के अवशेष के रूप में यहाँ तनाव के कुछ चिह्न व अनसुलझी समस्याएँ विद्यमान हैं। अतः, शान्ति की सुरक्षा के लिए यूरोपीय सुरक्षा, सहयोग तथा स्थायी सीमाओं के आन्दोलन की माँग प्रबल होती गई और इसमें जनता के व्यापक वर्ग सम्मिलित होते गए।

यूरोप व विश्व में तनाव-शैथिल्य की उपलब्धि में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 24वीं कांग्रेस में लियोनिद ब्रेज़नेव के भाषण में निरूपित शान्ति व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के कार्यक्रम ने प्रमुख योगदान किया है।

भारत की सरकार ने चार शक्तियों के बर्लिन समझौते व अखिल-यूरोपीय शान्ति व सहयोग सम्मेलन के प्रथम चरण का स्वागत किया। संयुक्त घोषणा में दोनों देशों ने यूरोप में तनाव-शैथिल्य के गहन होने और शान्ति को सुदृढ़ बनाने की प्रक्रिया का स्वागत किया।

यूरोप में तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया 12 अगस्त, 1970 को प्रारम्भ हुई थी, जबकि सोवियत संघ व जर्मन संघ गणराज्य के बीच मास्को में एक सन्धि सम्पन्न हुई। यूरोप के राज्यों के बीच शान्ति क़ायम रखने और रचनात्मक सहयोग का विकास करने की दिशा में यह प्रमुख चरण था।

राष्ट्रपति गिरि ने सितम्बर 1970 की अपनी सोवियत संघ-यात्रा के दौरान

अपराह्न भोज में 23 सितम्बर को बल के अप्रयोग की व सहयोग की सोवियत-जर्मन संघ गणराज्य सन्धि का ज़िक्र किया और सोवियत सरकार द्वारा "शान्ति व सम्बन्ध सुधार का पथ ईमानदारी से अपनाने" की विद्वत्ता, दूरदर्शिता और राजनयिकता की प्रशंसा की। अपने भाषण में उन्होंने यूरोपीय स्थिति में होने वाले 'गहन व गुणात्मक' परिवर्तनों का उल्लेख किया।

अगले वर्ष जब भारत-सोवियत सन्धि सम्पन्न हुई तो सोवियत संघ, अमरीका, ब्रिटेन व फ्रांस के राजदूतों ने पश्चिम बर्लिन से सम्बद्ध प्रश्नों पर एक समझौते पर हस्ताक्षर किये, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप विद्यमान अत्यन्त जटिल समस्या के पारस्परिक रूप से स्वीकार्य समाधान की दिशा में महत्त्वपूर्ण क़दम था।

भारत की सरकार ने यूरोपीय तनाव-शैथिल्य के प्रारम्भ का मुक्त हृदय से स्वागत किया। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सितम्बर 1971 में अपनी सोवियत संघ-यात्रा के दौरान कहा :

"सोवियत संघ ने विश्व शान्ति के लिए अनेक पहल की हैं। जर्मन संघ गण-राज्य के साथ जो समझ स्थापित हुई है हम उसका स्वागत करते हैं और यह आशा करते हैं कि अन्य तनावों में भी और अधिक कमी होगी।"

उनकी यात्रा के अन्त में जारी किये गए भारत-सोवियत संयुक्त वक्तव्य में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के सुधार में योगदान करने की भावना से उद्भूत भारतीय पक्ष ने सुरक्षा व सहयोग के प्रश्नों पर अखिल-यूरोपीय सम्मेलन के आयोजन के प्रस्ताव का न केवल यूरोपीय महाद्वीप में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में तनाव में कमी करने की ओर एक क़दम के रूप में उच्च मूल्यांकन किया।

11 दिसम्बर, 1971 को जर्मन जनवादी गणतंत्र और जर्मन संघ गणराज्य ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसमें जनवादी जर्मनी के क्षेत्र से जर्मन संघ गणराज्य व पश्चिम बर्लिन के बीच आने-जाने वाले साधारण व्यक्तियों व पदार्थों के लाने-लेजाने के सम्बन्ध में ठोस विवरण दिया गया था।

नववर्ष की पूर्व वेला पर 'तास' से एक इंटरव्यू में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने यूरोप में "शान्ति व सुरक्षा की दिशा में पर्याप्त प्रगति" का उल्लेख किया।

मई 1972 में जर्मन जनवादी गणतंत्र और जर्मन संघ गणराज्य के बीच बौन में परिवहन सम्बन्धी सन्धि सम्पन्न हुई। दो प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों के बीच यह पहली सन्धि थी, जिसमें उनके यात्रियों के आने-जाने व माल लाने-ले जाने के सम्बन्ध में विधिसंगत आधार तैयार किया गया था।

उसी वर्ष जून में एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई। 3 जून, 1972 को सोवियत संघ-जर्मन संघ गणराज्य व पोलैंड-जर्मन संघ गणराज्य के बीच सम्पन्न

सन्धियों के पुष्टि-पत्रों का बौन में आदान-प्रदान किया गया, जिसमें सन्धियाँ औपचारिक रूप से लागू हो गई।

तत्कालीन चांसलर विली ब्रांट ने एक इंटरव्यू में यह घोषणा की कि "सोवियत संघ के साथ जर्मन संघ गणराज्य के सम्बन्धों ने अब बेहतरी के लिए सर्वथा नया मोड़ लिया है...हम अब एक-दूसरे से बिना किसी पूर्वधारणा के बात करने योग्य हैं। जून 1972 महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन का सूचक है।"

शान्ति व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की अपनी नीति के प्रति सुसंगत भारत ने यूरोप में शान्ति व सुरक्षा की इन नई उपलब्धियों व घटनाओं का स्वागत किया। सामान्यीकरण की प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए सरदार स्वर्ण सिंह ने दिल्ली में 2 जून, 1972 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभा में कहा कि "पिछले दिनों ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई हैं, जिन्होंने यूरोप के वातावरण में परिवर्तन ला दिया है।"

लियोनिद ब्रेज़नेव के सम्मान में 26 नवम्बर, 1973 को श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा दिये गए भोज में भारत की प्रधानमंत्री ने कहा : "हाल ही में उनके (लियोनिद ब्रेज़नेव के) अथक राजनीतिक प्रयासों की ओर सारी दुनिया का ध्यान आकर्षित हुआ। उनकी शान्ति के लिए कोशिश और पहल का हम स्वागत करते हैं। इससे कुछ कठिन समस्याओं का, जो दूसरे विश्व युद्ध का परिणाम थीं, हल निकालने में मदद मिली है, और दुनिया में आशा बँधी है।"

तनाव-शैथिल्य के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लियोनिद ब्रेज़नेव ने अपने सम्मान में दिल्ली में आयोजित नागरिक अभिनन्दन में 27 नवम्बर, 1973 को कहा :

"तनाव में कमी भले ही हुई हो पर दुनिया में नाभिकीय युद्ध का खतरा पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है, हाँ, वह घट ज़रूर गया है। और इसे हम सभी मानव-जाति की एक महान उपलब्धि समझते हैं। यह कैसे हो सकता है कि सिर्फ़ यूरोपीय और अमरीकी सभ्यता के लिए नाभिकीय युद्ध में फंस जाने का खतरा हो? अगर ऐसा युद्ध शुरू हुआ, तो शायद ही कोई महाद्वीप उसके विनाश से बच सकेगा। सभी राष्ट्र समान रूप से वायु-सेवन करते हैं और विश्व शान्ति की तरह पृथ्वी का वायुमण्डल भी अविभाज्य है।"

तनाव-शैथिल्य कौन ला सकेगा? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लियोनिद ब्रेज़नेव ने कहा :

'हमारा देश चाहता है कि नये-नये इलाक़ों में तनाव कम हो ताकि तनाव में इस कमी का फिर सारे संसार में विस्तार हो सके। हम अच्छी तरह समझते हैं अगर एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के जनगण और राज्यों की इच्छा-शक्ति, विवेक, ज़िम्मेदारी और उत्साह को विश्व राजनीति के पलड़े में पूरी

तरह न रखा ज़ाये, तो इस समस्या को हल करना दरअसल नामुमकिन होगा।"

तनाव में कमी किस प्रकार की जा सकेगी ? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रेज़नेव ने कहा :

"हमारे दृष्टिकोण का सार यह है : हम सभी देशों को सुझाव देते हैं—आइए हर राज्य की स्वतंत्रता और प्रभुसत्ता का आदर करें, एक-दूसरे के खिलाफ़ कोई फ़ौजी कार्रवाई न करें और फ़ौजी ताक़त का प्रयोग करने की धमकी भी एक-दूसरे को न दें। आइए, हम न केवल साथ-साथ शान्ति से रहें, बल्कि आपस में हर प्रकार का सहयोग भी करें। हम सभी सरकारों से यह अपील करते हैं। और सार्वजनिक ताक़तों से भी हम यह अपील करते हैं, क्योंकि हमारे विचार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नया रूप देने में इनका भी बड़ा योगदान हो सकता है।"

यूरोप में तनाव-शैथिल्य के सम्बन्ध में संयुक्त घोषणा में दोनों देशों के विचार उच्चतम स्तर पर अंकित किये गए। इसमें कहा गया : "दोनों पक्षों ने यूरोप में तनाव-शैथिल्य के गहन होने और शान्ति को सुदृढ़ बनाने की प्रक्रिया का स्वागत किया। उन्होंने यूरोपीय सुरक्षा और सहयोग विषयक सम्मेलन के भारी महत्त्व पर ज़ोर दिया। उन्होंने यह विश्वास प्रकट किया कि यह सम्मेलन तनाव में कमी लाने में ज़बर्दस्त योग प्रदान करेगा, यूरोपीय महाद्वीप में शान्ति, सुरक्षा एवं सहयोग के लिए मज़बूत आधार स्थापित करेगा।" उन्होंने आशा व्यक्त की कि अखिल यूरोपीय सुरक्षा और सहयोग-सम्मेलन सफलता के साथ सम्पन्न होगा।

हथियारों की होड़ और निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध में भी दोनों देशों के विचारों में समानता है। उनका यह विचार है कि हथियारों की होड़ मानवजाति के लिए अत्यन्त भयानक समस्या है।

सोवियत संघ के विदेश मंत्री आन्द्रेई ग्रोमिको ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में सितम्बर 1973 में सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के सैनिक बजटों में कमी करने का एक अत्यन्त रचनात्मक प्रस्ताव पेश किया था। उनका मत था कि इस प्रकार बचाई गई राशि का कुछ अंश विकासशील देशों को सहायता के रूप में दिया जाना चाहिए। तमाम शान्तिप्रिय मानवजाति ने, जो हथियारों की होड़ के भयंकर परिणाम समझती है, इसका स्वागत किया था।

सोवियत संघ के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए सरदार स्वर्ण सिंह ने ज़ोर देकर कहा कि इसका कार्यान्वयन निरस्त्रीकरण के लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक होने के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रमों को अनुप्राणित करेगा।

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भारत के इस विश्वास को व्यक्त किया

कि सैनिक बजटों में कटौती द्वारा होने वाली बचत का कुछ अंश विकासशील देशों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अतिरिक्त सहायता देने में लगाया जाना चाहिए। भारत और सोवियत संघ दोनों इस पर सहमत हुए कि यह तय करने के लिये रचनात्मक प्रयास किया जाना चाहिए कि किस प्रकार इस प्रस्ताव का उपयोग निरस्त्रीकरण के हित में और विकास की जरूरतों के लिये सहायता बढ़ाने में किया जा सकता है।

अपनी भारत-यात्रा के दौरान लियोनिद ब्रेज़नेव ने हथियारों की होड़ को समाप्त करने और निरस्त्रीकरण के महत्त्व पर बल दिया। भारतीय संसद में भाषण देते हुए उन्होंने घोषणा की :

"अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य हथियारों की होड़ को समाप्त करने और निरस्त्रीकरण के संघर्ष के पूरे मोर्चे पर आगे बढ़ने के लिये अनुकूल स्थितियाँ प्रस्तुत करता है। सोवियत संघ अनेक दशकों से यह संघर्ष चलाता आया है। हमारे प्रयासों तथा अन्य समाजवादी राज्यों और सभी शान्तिप्रिय देशों के प्रयासों के ठोस फल अब प्राप्त होने लगे हैं...

"निरस्त्रीकरण के क्षेत्र में आंशिक क़दमों के कार्यान्वयन से—जैसे कुछ प्रकार के हथियारों पर रोक लगाने, हर जगह और सबके द्वारा पूरी तरह नाभिकीय-परीक्षण बन्द किये जाने, सैनिक दृष्टि से सबसे मज़बूत शक्तियों के सामारिक हथियारों को परिसीमित करने सम्बन्धी और क़दम उठाने के साथ-साथ सैनिक बजट में कमी करने से—संसार इस क्षेत्र में अपने अंतिम लक्ष्य के अर्थात् आम और पूर्ण निरस्त्रीकरण के और अधिक निकट आयेगा।' सोवियत राज्य अपने अस्तित्व के प्रारम्भिक वर्षों से ही इस महान् लक्ष्य के लिये संघर्ष करता आया है। इसने इस ध्येय में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।"

उन्होंने आश्वासन दिया कि सोवियतों का देश उस दिन को निकटतर लाने का पूर्ण प्रयास करेगा, जब परस्पर संहार के साधनों को विनष्ट करने के बारे में मानवजाति के सर्वोत्तम विचारकों के युगों पुराने सपने साकार रूप धारण कर लेंगे।

सोवियत संघ द्वारा 21 दिसम्बर, 1973 को अपने 1974 के राष्ट्रीय बजट के कुल व्यय का 9.1 प्रतिशत सैन्य बजट के लिए तय किये जाने की घोषणा विश्व में शान्ति स्थापित करने की सोवियत पहलक़दमी का ज्वलन्त उदाहरण था।

साइप्रस के प्रश्न पर दोनों देशों की स्थितियों की 'अनुरूपता या निकटता' की पुनर्पुष्टि हुई। भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री सरदार स्वर्णसिंह की सितम्बर 1974 की सोवियत संघ-यात्रा पर जारी वक्तव्य में कहा गया कि दोनों पक्षों ने

इस पर "बल दिया कि सभी शान्तिप्रिय देशों को सैनिक खतरे के अड्डों को खत्म करने के लिए ज़ोरदार प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने साइप्रस के मामले में बाहरी सैनिक हस्तक्षेप के सिलसिले में भूमध्य सागर में उत्पन्न स्थिति पर गंभीर चिंता व्यक्त की। दोनों पक्षों ने घोषित किया कि साइप्रस की समस्या का न्यायोचित समाधान साइप्रस की स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता तथा वहाँ की आबादी के जन्मसिद्ध अधिकारों के प्रति सम्मान पर आधारित होना चाहिए।"

संयुक्त घोषणा में अन्यान्य प्रश्नों पर भी दोनों देशों की स्थिति में समानता की पुनर्पुष्टि की गई। दोनों देशों ने संयुक्त राष्ट्र के महत्त्व की, आम व पूर्ण निरस्त्रीकरण की, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी भी रूप में बल-प्रयोग की अथवा बल-प्रयोग की धमकी की निन्दा के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रस्ताव के प्रति समर्थन की, उपनिवेशवाद के अवशेषों को जल्द-से-जल्द और पूर्णरूप से मिटाने तथा उपनिवेशों और उनके जनगण को स्वतन्त्रता प्रदान करने सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा पर तेज़ी से और कारगर ढंग से अमल करने की दिशा में दृढ़तापूर्वक काम करने की पुनर्पुष्टि की। उन्होंने कहीं भी विद्यमान नस्लवाद और जातीय पृथग्वासन की प्रत्येक रूप में निन्दा की, साम्राज्यवाद और प्रतिक्रियावाद की शक्तियों के विरुद्ध तमाम सरकारों के संघर्ष के प्रति अपना समर्थन देने की घोषणा की, उत्तर कोरिया व दक्षिण कोरिया के बीच हुए सम्पर्कों का स्वागत किया और यह माना कि कोरियाई प्रायद्वीप में तनाव की कमी से एशिया में शान्ति और सुरक्षा को सुदृढ़ करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान मिलेगा।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य है कि लियोनिद ब्रेज़नेव ने संयुक्त घोषणा में भारत की शान्तिपूर्ण विदेश नीति का जिस पर वह निरन्तर चल रहा है, उसकी गुट-निरपेक्षता की नीति का और शान्ति के लिये तथा उपनिवेशवाद, नवउपनिवेशवाद एवं नस्लवाद के विरुद्ध संघर्ष में उसके महान् योगदान का उच्च मूल्यांकन किया, जिससे भारत को विश्व के रंगमंच पर उचित प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

अतः, यह स्पष्ट है कि दोनों देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर असामान्य रूप से समझ विद्यमान है। संयुक्त घोषणा में इसे सशक्त शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। लियोनिद ब्रेज़नेव की यात्रा ने विश्व-शान्ति की सुरक्षा में तथा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के समर्थन में भावी सहयोग के लिये व्यापक आयाम विस्तृत किया तथा नवीनतम क्षितिज उन्मुक्त किए। शान्ति, प्रगति व सुखी जीवन के लिये संघर्ष में भारत ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है और कर रहा है। विश्व के मामलों में भारत की भूमिका का उच्च मूल्यांकन करते हुए लियोनिद ब्रेज़नेव ने कहा है :

"यह बात छिपी नहीं है कि भारत की नयी भूमिका और संसार में उसकी प्रतिष्ठा तथा प्रभाव का बढ़ना हर किसी को पसन्द नहीं है। कुछ तो इसमें बाधा डालने का भी प्रयास करते हैं। जहाँ तक सोवियत संघ की बात है, हम इस ऐतिहासिक परिवर्तन का स्वागत करते हैं। भारत की बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका को हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के गहरे जनवादीकरण की वर्तमान प्रक्रिया की ओर इस बात की विश्वसनीय अभिव्यक्ति मानते हैं कि जो जनगण सदियों तक दूसरों की नीति की आधीनता में रहे, वे अब अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में समानता-पूर्ण सहभागी और इसके शिल्पी बन गए हैं। भारत की नयी भूमिका का स्वागत करने का हमारे लिये एक और कारण यह है कि इसकी नीति का उद्देश्य उन लक्ष्यों की प्राप्ति है, जो सोवियत नीति के भी लक्ष्य हैं, यानी उपनिवेशवाद के खिलाफ़, आक्रामक साम्राज्यवादी युद्धों के खिलाफ़ और शान्ति को सुदृढ़ बनाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के स्थिरीकरण के लिये संघर्ष करना।"

6

राष्ट्र निर्माण में सहभागी

भारत के आर्थिक उत्थान के लिए भारत-सोवियत सम्बन्ध दो राज्यों के बीच सहयोग की अत्यन्त समृद्ध अभिव्यक्ति है। नव-उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष में और आत्म-निर्भरता के प्रयासों में यह मित्रता अपूर्व तत्त्वों से युक्त है। इस क्षेत्र में, एशिया और विश्व में जितनी ही शान्तिपूर्ण और सहयोगपूर्ण स्थिति होगी, भारत को अपनी आर्थिक स्वतंत्रता सुदृढ़ करने के प्रयासों के लिए निर्धनता दूर करने व जनता के जीवन-स्तरों को ऊँचा उठाने के लिए उद्योग व कृषि के विकास की उतनी ही अधिक सम्भावनाएँ प्राप्त रहेंगी। इसीलिए दोनों देश, जैसा कि पहले अध्यायों में स्पष्ट किया जा चुका है, जीवन्त अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर, शान्ति एवं सहयोग की समस्याओं पर विचारों में समानता रखते हैं। लियोनिद ब्रेज़नेव की भारत-यात्रा के दौरान हस्ताक्षरित दस्तावेज़ों ने उस बहुपक्षीय सहयोग को नवीन आयाम प्रदान किये हैं, जो दो दशकों से अधिक की अवधि में गुणात्मक व परिमाणात्मक दृष्टि से संवर्धनशील रहा है।

सोवियत संघ से 2 दिसम्बर, 1953 के प्रथम पंचवर्षीय व्यापार समझौते से तथा 2 फ़रवरी, 1955 के भिलाई इस्पात संयंत्र के निर्माण सम्बन्धी युगान्तरकारी क़रार से लेकर अब तक दोनों देशों ने लम्बा रास्ता तय किया है और सोवियत संघ द्वारा भारत को दी गई सहायता इसके अर्थतंत्र के प्रत्येक क्षेत्र में विस्तृत हुई है। भारत-सोवियत व्यापार 1950-51 में केवल कुछ लाख का ही था लेकिन 1974 में यह बढ़कर छह सौ करोड़ रुपये का हो गया।

भारत-सोवियत सन्धि में दोनों देशों के बीच आर्थिक, वैज्ञानिक व प्रोद्योगिक सहयोग को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है और इसमें दोनों देशों ने अपनी इस इच्छा को अभिव्यक्त किया है कि वे "दोनों देशों के बीच समानता, पारस्परिक लाभ और परस्पर सर्वाधिक अनुकूल राष्ट्र जैसे व्यवहार के आधार पर व्यापार, परिवहन और संचार का विस्तार करेंगे तथा इन क्षेत्रों में पारस्परिक रूप से लाभदायक व व्यापक सहयोग को सुदृढ़ एवं विस्तृत करते रहेंगे।"

इस प्रकार भारत-सोवियत सन्धि ने इस सहयोग को नया महत्त्व प्रदान

किया और इससे ऐसे महत्त्वपूर्ण फल उपलब्ध हुए हैं जो निरन्तर हमारे देश की आकृति को सकारात्मक रूप से परिवर्तित कर रहे हैं।

1971 के दौरान जब पाकिस्तान के जनरलों ने भारत की प्रभुसत्ता व क्षेत्रीय अखण्डता को ख़तरा पहुँचाना आरम्भ किया तो संयुक्त राज्य अमरीका से भारत को 87.6 करोड़ डालर की, जो सहायता रवाना की जा चुकी थी उसे अमरीकी सरकार ने रोक दिया। यह भारत को दवाने और बाध्य करने की बहुत भद्दी चाल थी। भारत को पूर्वी बंगाल को सहायता देने से विमुख करने के स्थान पर निक्सन प्रशासन को भारत से मुँह की खानी पड़ी। दिल्ली विश्वविद्यालय में 80,000 विद्यार्थियों के समक्ष बोलते हुए 10 दिसम्बर, 1971 को श्रीमती इन्दिरा गांधी ने करारी फटकार बताते हुए कहा कि भारत अन्य देशों की सहायता का स्वागत करता है किन्तु यदि सहायता का मतलब भारत की आज़ादी को सीमित करना है तो "हमें ऐसी सहायता नहीं चाहिए और हम इसकें बिना भी काम चला सकते हैं।"

लेकिन, अमरीकी नीति के विपरीत सोवियत संघ ने न केवल अपनी सहायता जारी रखी बल्कि उसे और तेज़ कर दिया। भारत को 15,000 से 20,000 टन तक मध्य एशियाई कपास देने के एक महत्त्वपूर्ण क़रार पर 16 दिसम्बर, 1971 को नई दिल्ली में हस्ताक्षर हुए। इस कपास का सूत तैयार करके और उससे सूती वस्त्र बनाकर उनका निर्यात सोवियत संघ किया जाना था। यह ऐसा क़रार था, जिसमें औपनिवेशिक रीति को एकदम उलट दिया गया। एक उन्नत देश, किसी विकासशील देश को कच्चा माल इसलिए देने को तैयार हुआ था ताकि तैयार माल उसी उन्नत देश को निर्यात किया जा सके।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपनी सितम्बर 1971 की सोवियत संघ-यात्रा के दौरान सोवियत सहायता की बहुत प्रशंसा की। अपने सम्मान में दिये गए एक भोज में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने मास्को में कहा : "सोवियत संघ और भारत के बीच सहयोग द्विपक्षीय रूप से परस्पर बहुत लाभदायक रहा है। इस्पात, पेट्रोलियम और अन्य आधारभूत भारी उद्योगों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शाखाओं में हमारे अर्थतंत्र के सार्वजनिक क्षेत्र को इतने बहुत सुदृढ़ किया है। पिछले वर्षों में हमारे व्यापार में, विशेषत: रुपये में अदायगी की व्यवस्था होने के बाद से, काफ़ी वृद्धि हुई है। हमारे व्यापार में सम्वर्धन होने से अधिक महत्त्व तो इसकी बदलती हुई व्यवस्था का है..."

वार्ताओं के दौरान दोनों पक्षों ने अन्तरिक्ष-अनुसंधान, शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए नाभिकीय ऊर्जा के उपयोग, दोनों देशों और उनके औद्योगिक उद्यमों के बीच सहयोग के क्षेत्रों के साथ-ही-साथ आर्थिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में आपसी सहयोग के नये स्रोतों का पता लगाने के लिए उठाये गए क़दमों पर सन्तोष प्रकट किया।

उन्होंने इसे आवश्यक माना कि इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य नये क्षेत्रों का पता लगाया जाय जिनमें इस तरह का पारस्परिक सहयोग बढ़ाया जा सके।

इसी उद्देश्य से आर्थिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहयोग के लिए अन्तर-सरकारी आयोग गठित करने का निश्चय किया गया। मास्को में 19 सितम्बर, 1972 को भारत के तत्कालीन योजना मंत्री दुर्गाप्रसाद धर तथा सोवियत संघ की वैदेशिक आर्थिक सम्बन्धों की राज्यीय योजना समिति के अध्यक्ष सेम्योन स्काच्कोव द्वारा एक क़रार पर हस्ताक्षर किये जाने के बाद यह आयोग औपचारिक रूप से स्थापित हो गया। इसने सहयोग के नये परिपार्श्व उन्मुक्त किये तथा तैलशोधन, बिजली, उर्वरक और इस्पात में भारत की क्षमता बढ़ाने के आवश्यक कार्यक्रम में सोवियत सहायता निश्चित की। इस आयोग का महत्त्व व्यक्त करते हुए सोवियत संघ की मंत्रि-परिषद की वैदेशिक आर्थिक सम्बन्धों की राज्यीय समिति के वरिष्ठ विशेषज्ञ ईवान नेस्तेरेंको ने कहा :

"अन्तर-सरकारी आयोग के गठन ने इस समय विशेष महत्त्व धारण कर लिया है जबकि भारत अपने आर्थिक विकास की पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार कर रहा है। जहाँ तक दोनों देशों के बीच सहयोग की सम्भावनाओं का सम्बन्ध है, आयोग के कार्यकलाप न केवल इस सहयोग की प्रवृत्तियाँ निर्धारित करेंगे, बल्कि ठोस उद्देश्य भी अत्यन्त सफलतापूर्वक निर्धारित करेंगे।"[1]

सोवियत सहायता और व्यापार के कुछ लाभ सर्वविदित हैं जिनमें से एक तो यही है कि वे विदेशी मुद्रा की समस्याएँ पैदा नहीं करते। पश्चिमी जगत से मिलने वाली सहायता में प्रायः राजनीतिक दबाव निहित होता है। इसके विपरीत सोवियत सहायता निस्स्वार्थ सहयोग होने के कारण विकासशील देशों को स्वतः सोवियत संघ के निकट ले आती है।

भारत सरकार के तत्कालीन मुख्य आर्थिक सलाहकार डॉ० मनमोहनसिंह ने 'इस्कस' द्वारा आयोजित 'गुटनिरपेक्षता, आत्मनिर्भरता, और भारत-सोवियत मित्रता' सम्बन्धी सेमिनार में 30 जनवरी, 1972 को नई दिल्ली में भाषण देते हुए सोवियत सहायता की प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार व्यक्त किया : निर्यात और आयात की क़ीमतें शेष दुनिया से ऐसे ही व्यापार की तुलना में भारत के लिए कहीं अधिक अनुकूल हैं, हमारी उत्पादक-व्यवस्था और हमारी आयात-क्षमता बढ़ती है, भुगतान माल के रूप में होता है, पश्चिमी देशों से भारत की सौदे की ताक़त बढ़ती है, प्रचारात्मक ख़र्चों के बिना ऐसी चीज़ों का निर्यात बढ़ता है, जो पहले निर्यात नहीं की जाती थीं, निर्यात के खर्चे में कमी होती है, निर्यात के दाम कम करके और आयात के दाम बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने की बुराइयाँ दूर

1. सोवियत रिव्यू, अंक 48, 14 अक्तूबर, 1972, पृ० 7

होती हैं, औद्योगिक विशिष्टीकरण और समन्वय के लिए अपनी सन्तोषजनक व्यवस्था समेत विकासशील देशों के साथ आर्थिक सहयोग के नये स्वरूपों का परिप्रेक्ष्य खुलता है। सोवियत सहायता के इन विशेष पहलुओं से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि ये पहलू आर्थिक सम्बन्धों के ऐसे आदर्श हैं कि जो प्रभुसत्ता-सम्पन्न स्वतंत्र राज्यों तथा अधिकाधिक रूप से स्वतंत्र होती दुनिया में क़ायम किये जाने चाहियें।[1]

भारत-सोवियत राजनयिक सम्बन्धों की स्थापना की रजत-जयन्ती के अवसर पर 'इस्कस' द्वारा नई दिल्ली में आयोजित एक विराट सभा में 13 अप्रैल, 1972 को भाषण करते हुए सरदार स्वर्णसिंह ने भारत की उन समस्याओं का सविस्तार विवेचन किया जिनका हमें औद्योगिकीकरण के प्रारम्भिक चरण में सामना करना पड़ा था। सोवियत संघ व अन्य समाजवादी देशों के अनुकूल दृष्टिकोण की पश्चिमी देशों से तुलना करते हुए उन्होंने कहा :

"जब देश के अर्थतंत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए अपने देश के औद्योगिकीकरण के प्रयास में हमने अन्य देशों की ओर सहयोग के लिए हाथ बढ़ाया, तब हमें कुछ देशों से पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिला। ये देश वैचारिक कारणों से हमारे सार्वजनिक क्षेत्र के प्रसार के लिए सहयोग के विभिन्न कार्यक्रमों में सहायता करने के लिए आगे नहीं बढ़े। दूसरी तरफ़, सोवियत संघ ने न केवल हमारे उद्योगों को विकसित करने, न केवल हमारे अर्थतंत्र को सुदृढ़ बनाने, बल्कि अपने यहाँ सार्वजनिक क्षेत्र के निरन्तर विस्तार और सुदृढ़ीकरण के हमारे कार्यक्रम को वस्तुतः सार्थक बनाने में हमारे साथ तत्परतापूर्वक सहयोग किया और मिलजुल कर काम किया।"

हमारे इस सर्वेक्षण में मास्को में 5 मई, 1972 को हस्ताक्षरित व्यापार संलेख का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः, यह 26 दिसम्बर, 1970 को हस्ताक्षरित 1971-75 के लिए पंचवर्षीय भारत-सोवियत व्यापार क़रार का विस्तार था, जिसकी एक धारा में कहा गया था :

"आवश्यकता पड़ने पर दोनों देश औद्योगिक सहायता के क्षेत्र में सहयोग के साथ-साथ द्विपक्षीय व्यापार का और अधिक संवर्धन करने के विचार से परस्पर लाभ के आधार पर प्रत्येक देश में वर्तमान और अतिरिक्त उत्पादन क्षमताओं के के सृजन के और अधिक प्रयोग के लिए नये आयाम उन्मुक्त करने के लिए परामर्श करेंगे।"

दोनों पक्ष इस बात पर भी सहमत हुए थे कि "दोनों सरकारें दोनों देशों में औद्योगिक व वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के बीच सहयोग के विकास में सहायता करेंगी

1. यूनिटी इन डाईवर्सिटी पृ० 134

ताकि वे तीसरे देशों में संयुक्त रूप से मण्डी तैयार करने की, और तीसरे देशों में औद्योगिक विकास के कार्यक्रम से उत्पन्न अपनी आवश्यकताओं की इच्छा को पूरा करने के विचार के साथ-साथ अपने संसाधनों व जानकारी को एकजुट कर सकें।"

मई 1972 के व्यापार क़रार में भारत और सोवियत संघ के बीच 1972 के दौरान कुल मिलाकर 387 करोड़ रुपये के व्यापार की परिकल्पना की गई थी। वस्तुतः, 1971 के आँकड़ों की तुलना में यह 25 प्रतिशत की वृद्धि थी। सोवियत संघ भारत को उर्वरक, अलौह धातुएँ, अखबारी काग़ज़, मिट्टी का तेल, जस्ता व तांबा देने के लिए सहमत हो गया था।

यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि इस क़रार में सोवियत संघ भारत को 400 टन से 1,500 टन तांबा और 50,000 टन अख़बारी कागज़ देने के लिए सहमत हुआ था। भारत की खाद्य समस्या को दृष्टिगत रखते हुए सोवियत संघ ने 200,000 टन उर्वरक भी देना स्वीकार कर लिया था। सोवियत संघ भारत को 500,000 टन मिट्टी का तेल भी देने के लिए सहमत हुआ था। इसमें सोवियत संघ की तत्काल आवश्यकतापूर्ति के लिए विद्युत व बिजली उपकरण, खनन तथा तैल ड्रिलिंग के उपकरण, एक्सकैवेटर, लिफ़्ट ट्रकें, क्रेन परिवहन की मशीनें, वायु परिवहन उपकरण तथा वेल्लित इस्पात आदि देने की व्यवस्था थी।

इस क़रार का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश वह था जिसमें भारत अपने यहाँ से जूट, चाय, काजू आदि पारम्परिक वस्तुओं के अलावा कपड़े, बुने हुए वस्त्र और सौन्दर्य प्रसाधन जैसी उपभोक्ता वस्तुएँ, बिजली के केबल, गैराज के उपकरण, एक्युमुलेटर, तार की रस्सियाँ, रासायनिक पदार्थ और रंग-रोग़न जैसे औद्योगिक उत्पाद बड़े पैमाने पर भेजने के लिए सहमत हुआ था।

10 मई, 1972 को सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष अकादमीशियन एम० वी० केल्दिश व भारतीय अन्तरिक्ष-अनुसंधान संगठन के अध्यक्ष प्रो० एम० जी० के० मेनन ने बाह्य-अन्तरिक्ष के शान्तिपूर्ण अन्वेषण में द्विपक्षीय सहयोग सम्बन्धी क़रार पर हस्ताक्षर किये। इस क़रार के तहत भारत में निर्मित उपग्रह सोवियत भू-क्षेत्र से एक सोवियत वाहक-रॉकेट द्वारा 1974 के अन्त में छोड़ा जाना था जो इस वर्ष अप्रैल में छोड़ भी दिया गया। इस क़रार में यह भी तय किया गया था कि सोवियत संघ प्रयोग करने में हर प्रकार की आवश्यक तकनीकी सहायता देगा और इस उपग्रह को छोड़े जाने से पहले भारतीय विशेषज्ञों को इतना प्रशिक्षण दे देगा कि वे इस काम में हाथ बँटा सकें।

भारत और सोवियत संघ के बीच 2 अक्तूबर, 1972 को मास्को में एक अन्य क़रार पर हस्ताक्षर हुए। इस क़रार पर सोवियत संघ की मन्त्रि परिषद के उपाध्यक्ष व्लादीमिर किरिल्लिन और भारत के तत्कालीन औद्योगिक विकास,

विज्ञान और औद्योगिक मंत्री सी० सुब्रह्मणयम् ने हस्ताक्षर किये थे, जिसके अनुसार औद्योगिक व विज्ञान के क्षेत्रों में सहायता देना तय हुआ था।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 3 अक्तूबर, 1972 को बोकारो इस्पात संयंत्र के प्रथम धमनभट्टी समुच्चय का उद्घाटन किया था। संयंत्र के समीप एक विराट जनसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि बोकारो न केवल भारत-सोवियत मित्रता का बल्कि हमारे देश की आत्म-निर्भरता और आर्थिक विकास का प्रतीक है।

भारत के इस्पात उद्योग में सोवियत सहायता की प्रशंसा करते हुए इस्पात और खान मंत्री स्वर्गीय मोहन कुमारमंगलम् ने एक इन्टरव्यू में कहा था :

"इसमें संदेह नहीं है कि हमें सोवियत संघ से इस्पात के क्षेत्र में अत्यन्त ठोस सहायता मिली है और सम्भवत: यह भारतीय अर्थतन्त्र के एक अत्यन्त निर्णायक क्षेत्र में यह अत्यन्त निर्णायक सहायता है।"

भारत के तत्कालीन विदेश व्यापार मंत्री ललितनारायण मिश्र व सोवियत संघ के विदेश व्यापार के उपमंत्री आई० टी० ग्रीशिन ने 1973 के भारत-सोवियत व्यापार संलेख पर, जिसमें 410 करोड़ रुपये के कुल व्यापार की परिकल्पना की गई थी, नई दिल्ली में 25 नवम्बर, 1972 को हस्ताक्षर किए। भारत सरकार के एक प्रवक्ता के अनुसार यह उल्लेखनीय है कि गत वर्षों में सोवियत संघ से भारत के ग़ैर-पारम्परिक वस्तुओं के व्यापार में तेज़ी से वृद्धि हुई।

यहाँ इस बात पर बल देना आवश्यक है कि भारत को सहायता प्रदान करने में इसके राष्ट्रीय अर्थतंत्र का निर्माण करने में सोवियत संघ यह सुनिश्चित करता है कि भारतीय अर्थतंत्र द्वारा प्रदत्त सम्भावनाओं का पूरी तरह इस्तेमाल किया जाये। यह वही उपकरण भारत को सप्लाई करता है जो भारत के लिए अनिवार्य हैं या जिनका यहाँ निर्माण नहीं होता। इतना ही नहीं, सोवियत अर्थतंत्र में होने वाले बड़े परिवर्तनों तथा इसकी प्रौद्योगिकी की प्रगति से भी भारत लाभान्वित होता है। इस्पात के उत्पादन में व धातुकर्म सयंत्रों के निर्माण में विश्व में सोवियत संघ का प्रमुख स्थान है। 1972 में यहाँ तैल का 39 करोड़, 40 लाख टन व उर्वरक का 66 करोड़, 10 लाख टन उत्पादन हुआ था।

अन्तर-सरकारी आयोग की पहली बैठक 9 से 17 फ़रवरी 1973 तक नई दिल्ली में हुई थी। एक सप्ताह के संयुक्त विचार-विमर्श की सफल परिणति के रूप में आयोग के दो सह-अध्यक्ष सोवियत संघ की मंत्रि-परिषद की वैदेशिक आर्थिक सम्बन्धों की समिति के अध्यक्ष सेम्योन स्काञ्कोव और भारत के तत्कालीन योजना मंत्री दुर्गाप्रसाद धर ने ऐतिहासिक महत्त्व के संलेख पर हस्ताक्षर किये। इस संलेख ने अर्थतंत्र, विज्ञान और प्रविधि में और अधिक भारत-सोवियत सहयोग की शाखाओं और क्षेत्रों की रूपरेखा प्रस्तुत की। इसके साथ-साथ विज्ञान

और प्रविधि की सोवियत संघ की राज्यीय समिति के उपाध्यक्ष एल० एन० इफ्रेमोव के तथा भारत सरकार के विज्ञान और प्रविधि विभाग के सचिव ए० जे० किदवई ने विज्ञान और प्रविधि के क्षेत्र में एक दूसरे संलेख पर हस्ताक्षर किये।

आगामी वर्षों के पारस्परिक सहयोग के दिशा-निर्धारण और विकास की दृष्टि से इनका भारी महत्त्व था। ये फ़ैसले समय की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण थे क्योंकि दोनों देशों के नियोजकगण आर्थिक विकास की अपनी भावी योजनाओं को रूपायित करने में संलग्न थे।

विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग के प्रस्तावों की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1. दोनों सह-अध्यक्षों ने लौह धातुकर्म (इस्पात) के क्षेत्र में जिस मुख्य संलेख पर हस्ताक्षर किये थे, उसमें भिलाई व बोकारो इस्पात कारखानों की वार्षिक उत्पादन क्षमता का क्रमश: 70 लाख टन व एक करोड़ टन तक विस्तार परिकल्पित था।

2. सोवियत संघ अलौह धातुकर्म के क्षेत्र में मध्य प्रदेश के तांबा भण्डार के आधार पर एक खान और संकेन्द्रक के डिज़ाइन बनाने और इसे तैयार करने में सहायता करेगा।

3. सोवियत संघ भूगर्भीय सर्वेक्षण, तैल तथा प्राकृतिक गैस के उत्पादन और प्रोसेसिंग में भू-रासायनिक तरीक़ों के प्रयोग में तथा तैल-शोधन की अतिरिक्त क्षमता स्थापित करने में भारतीय वैज्ञानिकों की सहायता करेगा।

4. भारत और सोवियत संघ साथ मिलकर अनुसन्धान कार्य करेंगे तथा रसायन, पेट्रो-रसायन और अन्य क्षेत्रों की वैज्ञानिक परियोजनाएँ हाथ में लेंगे।

5. यह भी आशा की जाती है कि भारत के विशेषीकृत उद्योगों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये जायेंगे।

6. सोवियत संघ सोवियत सहायता-प्राप्त परियोजनाओं को पूरा करने के लिए आवश्यक कल-पुर्ज़े देगा।

7. संलेखों में नयी परियोजनाएँ स्थापित करने में तथा मौजूदा परियोजनाओं की क्षमता के विस्तार में भारतीय प्रतिभा और औद्योगिक क्षमताओं का अधिकतम उपयोग परिकल्पित है।

8. सोवियत संघ कलकत्ता स्थित भूमिगत रेलवे के निर्माण में, उर्वरकों के उत्पादन में, लौह व अलौह धातुकर्म आदि के उत्पादन में सहायता करेगा।

9. 1976-80 के व्यापार के लिये सहयोग का कार्यक्रम जिसे समुचित संगठन तैयार करेंगे, दोनों देशों में वाणिज्य का और अधिक विस्तार करेगा।

अतः यह स्पष्ट है कि इन संलेखों ने भारत-सोवियत सहयोग को पर्याप्त

रूप से व्यापक करने की प्रक्रिया का जो ब्रेज़नेव की भारत-यात्रा के फलस्वरूप उच्चतर स्तर पर पहुँच गई, सूत्रपात किया।

इन संलेखों के फलस्वरूप 20 जुलाई, 1973 को मास्को में भारत के तत्कालीन पेट्रोलियम व रसायन मंत्री देवकान्त बरुआ और सोवियत संघ की वैदेशिक आर्थिक सम्बन्धों की राज्यीय समिति के अध्यक्ष सेम्योन स्काच्कोव ने मथुरा में तैल रिफ़ाइनरी के निर्माण में सहयोग से सम्बन्धित संलेख पर हस्ताक्षर किये। इसके तहत सोवियत संघ भारत को इस परियोजना के सम्बन्ध में ऐसे उपकरण सप्लाई करेगा, जिनका भारत में उत्पादन नहीं होता है। सोवियत संघ भारत को टैंकरों व भण्डारों के लिए 22 हज़ार टन इस्पात भी देने को सहमत हुआ था। मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के मूल्यों के अनुसार और अदायगी रुपयों में होनी थी। अदायगी की ऐसी व्यवस्था भारत व सोवियत संघ के बीच तमाम क़रारों की प्रमुख विशेषता है। यह आशा की जाती है कि रिफ़ाइनरी 6 लाख टन मोटर स्प्रिट, 14 लाख टन तीव्रगामी डीज़ल तेल (जिसमें उर्वरक खाद्य-भण्डार शामिल होंगे), 50,000 टन तरल पेट्रोलियम गैस और 3 लाख टन विटुमेन का उत्पादन करेगी।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 2 अक्तूबर, 1973 को मथुरा रिफ़ाइनरी का शिलान्यास किया। अपने भाषण के दौरान उन्होंने कहा कि भारत को दी गई सोवियत सहायता सच्ची मित्रता का उदाहरण है।

भारत और सोवियत संघ के बीच संवर्धनशील, बहुमुखी और परस्पर लाभ-दायक आर्थिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक सहयोग की इस पृष्ठभूमि में लियोनिद ब्रेज़नेव की भारत यात्रा हुई। श्रीमती इन्दिरा गांधी से ब्रेज़नेव की वार्ताओं के फलस्वरूप पूर्व समझौतों में परिकल्पित अनेक परियोजनाओं को अन्तिम रूप दिया गया तथा दोनों राज्यों में सहयोग को गुणात्मक रूप से उच्चतर चरण पर पहुँचाने के लिये नये वातायन उन्मुक्त हुए। आर्थिक एवं व्यापारिक सहयोग को और अधिक विकसित करने से सम्बन्धित 15 वर्षीय समझौता मौजूदा घनिष्ठ सम्बन्धों को आगे बढ़ाता है और स्पष्ट रूप से इसे दीर्घकालिक दिशा प्रदान करता है। इसमें कृषि सहित अर्थतंत्र के सभी प्रमुख क्षेत्रों में भारत की सहायता करने का सोवियत संकल्प मूर्त्त है, जिससे देश की आत्मनिर्भरता और औद्योगिक परिपक्वता की दिशा में होने वाली प्रगति को गति तेज़ करने में सहायता मिलेगी। समझौते में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई कि यह 'सहयोग दोनों देशों के आर्थिक और सामाजिक प्रगति के संघर्ष में उनकी जनता के हितों में है।'

इस समझौते ने उन अन्यान्य क्षेत्रों को और अधिक स्पष्ट कर दिया, जिनमें आर्थिक व तकनीकी सहयोग को गहन व सुदृढ़ किया जा सकता था, विशेषत:

दोनों देशों के अर्थतंत्र की उन तमाम शाखाओं में जिनमें 'तीव्र विकास के लिए आवश्यक आर्थिक पूर्वापेक्षाएँ अनुकूल हैं।'

समझौते में विशेषतः उन अनेक क्षेत्रों का उल्लेख है जिनमें सहयोग की अच्छी सम्भावनायें मौजूद हैं, जैसे लौह एवं इस्पात तथा अलौह धातुओं के उत्पादन में तैल, प्राकृतिक गैस, कोयला तथा अन्य खनिज पदार्थों का पता लगाने में, उन्हें निकालने व साफ़ करने में, विद्युत इंजीनियरी, पेट्रोरसायन उद्योग, जहाज़रानी एवं उद्योग की अन्य शाखाओं में और कृषि में तथा कार्मिकों को प्रशिक्षण देने की सुविधाएँ प्रदान करने में सम्भावनायें मौजूद हैं। सोवियत संघ भारत में विशेषीकृत प्रशिक्षण के लिए संस्थान स्थापित करने में भी सहायता करेगा।

सोवियत संघ भिलाई व बोकारो के उत्पादन को क्रमशः 70 लाख टन व एक करोड़ टन तक बढ़ाने के लिए, 60 लाख टन की क्षमता वाली मथुरा रिफ़ाइनरी की स्थापना के लिए, मलंझखण्ड के तांबा खनन समुच्चय व कलकत्ता की भूमिगत रेल परियोजना के निर्माण के लिए सहमत हुआ था। सोवियत संघ अन्य परियोजनाओं के साथ-साथ अलौह धातुओं के उत्पादन तथा उद्योग की हल्की और दूसरी शाखाओं के सूत्र में उत्पादन सहयोग के विकास के लिए ऋण देगा। इस सहयोग की शर्तें पारस्परिक परामर्श और अन्य क़रारों के अनुसार निश्चित की जायेंगी।

शान्ति व सामाजिक कल्याण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के कारण दोनों देश वैज्ञानिक व तकनीकी सहयोग का विकास करेंगे, जिसमें शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु शक्ति का प्रयोग अन्तरिक्ष अन्वेषण और इलेक्ट्रानिक्स क्षेत्र में विकास शामिल होंगे।

इस क़रार की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें दोनों देशों के आर्थिक एवं मज़दूर संगठनों के बीच घनिष्ठ सहयोग क़ायम करना तय किया गया था। क़रार में कहा गया था कि दोनों राज्य "सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ और भारत गणराज्य के सम्बद्ध संगठनों के बीच आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने का हर सम्भव प्रयास करेंगे तथा...दीर्घकालिक क़रार एवं संविदाएँ सम्पन्न करने में सुविधा पहुँचाएँगे।" इन सबने यह स्पष्ट कर दिया कि कोई भी देश एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा क्योंकि यह स्पष्ट किया गया था यह सब "पारस्परिक हित के अनुकूल और दोनों देशों के अपने-अपने प्रचलित कानूनों के अनुरूप" होगा।

यह समझते हुए कि व्यापार का विकास करना सामान्य आकांक्षा है, दोनों देश अपने अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों के समनुरूप 'व्यापार और आर्थिक सम्बन्धों के क्षेत्र में एक-दूसरे को और अधिक लाभ, विशेषाधिकार एवं सुविधाएँ देने तथा शर्तों को और अधिक अनुकूल बनाने' के लिए सहमत हुए थे।

भारत-सोवियत संयुक्त घोषणा में दोनों देश 1980 तक भारत-सोवियत व्यापार के परिमाण में डेढ़ गुनी से दोगुनी तक वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए सहमत हुए थे।

सबसे महत्त्वपूर्ण समझौता वह है जिस पर भारत के योजना-आयोग तथा सोवियत राज्यीय योजना समिति के बीच हस्ताक्षर हुए, जिसमें दोनों देशों ने 'अर्थतंत्रों के नियोजित विकास' के महत्त्व की सराहना की है। इस समझौते में योजना के क्षेत्र में सहयोग के लिए अन्तर-सरकारी आयोग के ढाँचे के अन्तर्गत भारत-सोवियत संयुक्त अध्ययन दल स्थापित करने की परिकल्पना है। इस अध्ययन दल का मुख्य कार्य होगा निम्नांकित क्षेत्रों में अनुभव और ज्ञान का आदान-प्रदान :

(क) आर्थिक पूर्वानुमान,
(ख) वार्षिक, मध्यम और सन्दर्श आयोजन का रीति-विधान,
(ग) परियोजनाओं और कार्यक्रमों को तैयार करना,
(घ) आयोजित कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के प्रबोधन और मूल्यांकन की विधियाँ,
(ङ) सामग्री के सम्भरण का आयोजन,
(च) प्रकाशित रिपोर्टों व सामग्री का आदान-प्रदान।

इस सबके बावजूद, कुछ निर्लज्ज क्षेत्र यह आरोप लगातार लगाते रहते हैं कि भारत-सोवियत क़रारों में कोई गुप्त सैनिक समझौता है, और यह कि भारत ने सोवियत संघ को नौसैनिक बेड़े की सुविधाएँ देना मंज़ूर कर लिया है। ब्रिटेन का पत्र 'द इकॉनॉमिस्ट' इनमें से एक है जो बड़े पूँजीपतियों का पत्र होने के कारण इस प्रकार का विषाक्त प्रचार करता रहता है। सरदार स्वर्णसिंह ने राज्य सभा में सरकार की विदेश नीति पर दो दिवसीय बहस का उत्तर देते हुए 6 दिसम्बर, 1973 को स्पष्ट रूप से ऐलान किया था कि सोवियत संघ ने 'न तो कभी ऐसी सुविधाएँ माँगी थीं और न ही उन्हें ऐसी सुविधाएँ दी गई थीं।' उन्होंने यह भी कहा कि सोवियत संघ के साथ जिन क़रारों पर हस्ताक्षर हुए हैं वे भारत की सर्वविदित नीतियों में अंकित सिद्धान्तों के अनुरूप हैं।

लियोनिद ब्रेज़नेव की मैत्रीपूर्ण राजकीय भारत-यात्रा के परिणामों का अनुमोदन करते हुए सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के पोलिटब्यूरो, सोवियत संघ के सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमण्डल और सोवियत संघ की मंत्रि-परिषद ने 4 दिसम्बर, 1973 को आयोजित एक सभा में ऐलान किया :

"सोवियत संघ और भारत के बीच आर्थिक और व्यापार सहयोग के और अधिक विकास से सम्बन्धित दीर्घकालीन क़रार भी, जिस पर इसी यात्रा के

दौरान हस्ताक्षर हुए, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और यह परस्पर लाभदायक एवं फलप्रद आर्थिक सहयोग की दिशा का निर्धारण करता है। समानता और पारस्परिक लाभ के सिद्धान्त पर सोवियत संघ के अर्थतन्त्र और भारत की, जो राष्ट्रीय पुनरुत्थान और विकसित होते सामाजिक रूपान्तरणों के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है, आर्थिक स्वतंत्रता के दृढ़ीकरण, दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण उपादान है।"[1]

यहाँ यह दोहराना आवश्यक है कि आजकल सोवियत संघ भारत में 80 से अधिक औद्योगिक और अन्य परियोजनाओं के निर्माण में सहायता कर रहा है जिनमें से 50 से अधिक का निर्माण हो चुका है और वे पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से काम कर रही हैं। सोवियत सहायता से निर्मित उद्यमों में भारत के इस्पात के कुल उत्पादन का 30 प्रतिशत, तैल पदार्थों का 30 प्रतिशत, बिजली का 20 प्रतिशत, भारी इंजीनियरी उपकरण का 80 प्रतिशत और भारी बिजली के उपकरण का 60 प्रतिशत होता है। सोवियत संघ भारत को आत्मनिर्भर बनाने में सहायता देने के लिए हमेशा तत्पर रहा है।

भारत-सोवियत आर्थिक सम्बन्धों के विरुद्ध चीन के नेताओं का एक निराधार आरोप यह भी है कि सोवियत संघ भारत को 'पुराने उपकरण एवं प्रोद्योगिकी' देता है तथा भारत में निर्मित होने वाली परियोजनाओं में भारतीयों के भाग लेने में 'प्रतिबन्ध' लगाता है। ऐसी परियोजनाओं में बोकारो इस्पात संयंत्र का ज़िक्र किया जाता है।

लेकिन तथ्य क्या है? बोकारो के निर्माण-कार्य का प्रमुख भाग भारतीय राज्य संगठन व प्राइवेट फ़र्मे कर रही हैं। निर्माण-स्थल पर 60,000 से अधिक भारतीय कर्मी काम कर रहे हैं। अन्य भारत-सोवियत परियोजनाओं की भाँति बोकारो भी राष्ट्रीय कर्मियों के प्रशिक्षण का केन्द्र बन गया है।

भिलाई इस्पात संयंत्र का जब निर्माण हुआ था, तो सोवियत संघ से 90 प्रतिशत से अधिक उपकरण मंगाये गये थे। आज स्थिति में आमूल परिवर्तन हो चुका है। बोकारो के लिए दो-तिहाई मशीनों व 90 प्रतिशत धातु के ढाँचों का भारत में ही निर्माण किया जाता है।

भारत-सोवियत सहयोग की प्रत्येक परियोजना में अधुनातम प्रोद्योगिकी का प्रयोग किया गया है—ऐसा अनेक विशेषज्ञों का मत है।

ब्रेज़नेव की भारत यात्रा के कुछ समय बाद ही कुछ ठोस क्षेत्रों में सहयोग के लिए भारत व सोवियत संघ के बीच नये समझौतों व क़रारों पर हस्ताक्षर हुए। ऊर्जा संकट के सन्दर्भ में भारत व सोवियत संघ के बीच 27 दिसम्बर, 1973

1. सोवियत संघ के समाचार और विचार, 5 दिसम्बर, 1973

को एक संलेख पर हस्ताक्षर हुए जिसके तहत वर्तमान खानों से पचास से साठ लाख टन अतिरिक्त कोयले का उत्पादन किया जाना तय हुआ था।

मध्यप्रदेश में सिंगरौली कोयला-क्षेत्र को विकसित करने के अलावा सोवियत संघ उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर ज़िले में कोयला खोजने में सहयोग करेगा। यह अनुमान लगाया जाता है कि इस क्षेत्र में कुल मिलाकर 90 करोड़ टन कोयले के भंडार हैं। इस संलेख का महत्त्व यह भी है कि इसके तहत पेट्रोलियम पदार्थों के स्थान पर कोयले का गैसीकरण किये जाने में भी सोवियत सहायता उपलब्ध होगी।

इसके साथ-साथ सोवियत संघ कोयला-खनन के क्षेत्र में भारतीय कार्मिकों को अधुनातम तकनीका प्रशिक्षण भी प्रदान करेगा। सोवियत संघ खान सम्बन्धी मशीनों के निर्माण के लिए भारत को आवश्यक मशीनों की आपूर्ति करेगा तथा डिज़ाइन बनाने व अन्य प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करेगा।

सोवियत संघ भारत की वर्तमान समस्या को देखते हुए भारत को घरों में प्रयोग किया जाने वाला कोयला भेजने के लिए सहमत हो गया है।

तत्काल बाद तीन प्रमुख संलेखों पर हस्ताक्षर किये गए। एक कृषि के क्षेत्र में और अधिक सहयोग से सम्बन्धित था। दोनों देश इस सहयोग के आयाम व गहनता पर गत डेढ़ वर्ष से विचार-विमर्श कर रहे थे। भारत के तत्कालीन कृषि मंत्री फ़खरुद्दीन अली अहमद ने इस संलेख के आयाम को स्पष्ट करते हुए 'तास' से एक भेंटवार्ता में कहा कि "यह नया प्रोटोकोल अधिकतर बहु-क्षेत्रीय होगा तथा अधिक आधुनिक प्रौद्योगिकी व दक्षता से सम्बद्ध होगा।"

इस संलेख में कृषि के अन्यान्य क्षेत्रों में व्यापक अनुसन्धान और विकास पर बल दिया गया है। इनमें से कुछ क्षेत्र हैं—कराकुल भेड़ों की प्राप्ति व उनका संवर्धन, अन्तर्देशीय मत्स्यपालन में अनुसन्धान, चुकन्दर की खेती के विकास में सोवियत विशेषज्ञों का भारत-आगमन, सूरजमुखी के बीज का उत्पादन आदि इस संलेख में अत्यधिक महीन ऊन देने वाली सोवियत मेरीनो भेड़ों को भारत में भेजने की परिकल्पना भी थी।

भारतीय विशेषज्ञों को सोवियत संघ में तेल-बीजों में, जिनमें सूरजमुखी फूल शामिल है, कपास से तैल-निष्कर्षण में, भेड़-पालन में, भेड़ों के कृत्रिम प्रजनन में प्रशिक्षण दिया जायेगा। इसका भी उल्लेख संलेख में किया गया।

भारतीय व सोवियत कृषि-अधिकारियों के बीच दीर्घकालीन सहयोग पर विचार-विमर्श में भारत को सोवियत उर्वरक की आपूर्ति व पशु-पालन का विकास भी शामिल था। यह आशा की जाती है कि सोवियत संघ निकट भविष्य में उर्वरक की आपूर्ति में बढ़ोत्तरी करेगा और दो भेड़-फ़ार्मों के विकास में—एक

कराकुल (अस्त्राखानी) भेड़ के लिए व दूसरी मेरीनो भेड़ के लिए—सहायता करेगा।

चार 'क्षेत्रों' में सोवियत सहायता से 'क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम' की भी परिकल्पना की गई है।

दूसरा क़रार भारत में तैल की खोज व तैल-उद्योग के विकास के व्यापक कार्यक्रम से सम्बन्धित था।

तीसरा क़रार 1974 के व्यापार से सम्बन्धित था।

14 जनवरी, 1974 को भारत के पेट्रोलियम व रसायन मंत्री देवकान्त बरुआ और सोवियत तैल-उद्योग मंत्री वी० डी० शाशिन ने एक संलेख पर हस्ताक्षर किये। इस संलेख के तहत सोवियत संघ ने भारतीय तैल उद्योग के विकास के लिए व्यापक सहायता देने का वायदा किया। तैल की खोज व निष्कर्षण को द्रुत करने में भारत को सोवियत सहायता प्राप्त होनी थी। यह तय किया गया कि देश के विभिन्न कल्कयुक्त क्षेत्रों में तैल तथा गैस भंडारों के स्वरूप व सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए संयुक्त प्रयास किये जायेंगे। भारतीय पक्ष की सहायता के लिए सोवियत विशेषज्ञों को भारत भेजा जाना तय हुआ। तैल की खोज में सोवियत संघ आवश्यक उपकरण प्रदान करने के लिए सहमत हुआ। सोवियत संघ विशेष प्रकार के एनामेल के क़लई वाले ऐसे 15,000 मीटर पाइप सप्लाई करने के लिए सहमत हो गया, जिससे तैल की पुनर्प्राप्ति की दर बढ़ाई जा सके। सोवियत संघ भारतीय तकनीशियनों को प्रशिक्षण देने तथा उपकरणों की व अन्य प्रकार की सामग्री एवं अतिरिक्त कलपुर्ज़ों की सप्लाई के काम को तेज़ करने के लिए सहमत हुआ, ताकि भविष्य में किसी प्रकार की कठिनाई पैदा न हो सके। सोवियत विशेषज्ञों के अनुसार आत्म-निर्भर बनने के लिए भारत के पास यथेष्ठ तैल-भंडार हैं। इसके सम्भाव्य तैल व गैस क्षेत्र लगभग 16 लाख वर्ग किलोमीटर में विस्तृत हैं।

21 जनवरी, 1974 को हस्ताक्षरित 1974 के व्यापार संलेख में दोनों देशों के बीच व्यापारिक कारोबार में 35 प्रतिशत वृद्धि की परिकल्पना की गई थी।

1974 के संलेख के कुछ विशेष रूप से लाभदायक पहलू थे। सोवियत संघ उस वर्ष भारत की पाँचवीं पंचवर्षीय योजना की औद्योगिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए भारत को चार गुना अधिक कच्चे माल की आपूर्ति के लिए सहमत हुआ था। सोवियत निर्यात में होने वाली इस बढ़ोत्तरी को सन्तुलित करने के लिए सोवियत संघ उस वर्ष भारत से अपना आयात बढ़ाने और इसमें ज़्यादा प्रकार के माल शामिल करने के लिए सहमत हुआ।

संलेख के अनुसार सोवियत संघ को मिट्टी का तैल, उर्वरक, एस्बेस्टस, ताँबा, पैलेड्रियम, उपकरण और मशीनें आदि जैसी वस्तुओं समेत कुल मिलाकर 270

करोड़ रुपयों के मूल्य के कई प्रकार के सामानों की आपूर्ति करनी थी।

इसके अलावा सोवियत संघ ने उस साल पहली बार भारत को 10 हज़ार टन सूरजमुखी का तेल तथा अन्य प्रकार के वनस्पति तेल प्रदान करना और 45 हज़ार टन अखबारी काग़ज़ देना मंजूर किया था।

30 मार्च, 1974 को वी० एफ़० माल्त्सेव हरद्वार संयंत्र गये और वहाँ उन्होंने 200 मेगावाट क्षमता की दूसरी वाष्प टर्बाइन, 235 मेगावाट क्षमता के पहले टर्बोजनरेटर तथा 10 मेगावाट क्षमता की छोटी वाष्प टर्बाइन का उद्घाटन किया।

सोवियत संघ के कृषि मंत्रालय के भेड़-प्रजनन विभाग के अध्यक्ष डॉ० एल० स्तेपान्युक और भारत सरकार के कृषि मंत्रालय के अतिरिक्त सचिव आई० जी० नायडू ने नई दिल्ली में 1 अप्रैल, 1974 को भारत में भेड़-प्रजनन सम्बन्धी दो फ़ार्मों की स्थापना के सम्बन्ध में एक संलेख पर हस्ताक्षर किये। इनमें बकरी-प्रजनन तथा चुकन्दर की फ़सल सम्बन्धी प्रयोग होने थे।

इस संलेख में सोवियत संघ में भेड़-पालन और चुकन्दर की उपज से सम्बन्धित अनुसन्धान संस्थानों में खोज व विशेष कार्य में भारतीय वैज्ञानिकों व स्नातकोत्तरों के प्रशिक्षण की तथा अनुभव के आदान-प्रदान के लिए सोवियत वैज्ञानिकों के एक दल के भारत भेजे जाने की परिकल्पना की गई थी।

मास्को में 8 मई, 1974 को कृषि के क्षेत्र में भारत और सोवियत संघ के बीच वैज्ञानिक-प्राविधिक सहयोग के सम्बन्ध में संलेख पर भारत सरकार ने कृषि मंत्रालय के सचिव टी० पी० सिंह और सोवियत संघ के कृषि उपमंत्री बोरिस रुनोव ने हस्ताक्षर किये। इस संलेख में भारत में कृषि की प्रधान शाखाओं के और अधिक विकास को बढ़ावा देने के लिए भारतीय व सोवियत वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों के बीच परस्पर लाभदायक सहयोग को काफ़ी सुदृढ़ और गहरा बनाना परिकल्पित था।

धान की खेती के सर्वांगीण पंजीकरण और सूरजमुखी फूल की सुप्रसिद्ध उत्तर काकेशियाई क़िस्म की खेती में—जो भारत के लिए बहुत ही सम्भावना-पूर्ण लगती है—सोवियत संघ के वैज्ञानिकों की प्रगति से परिचित होने के लिए 20 से अधिक भारतीय वैज्ञानिकों व विशेषज्ञों का एक दल 1974-75 में सोवियत संघ जायेगा, ऐसा तय हुआ था।

'भारत-सोवियत संयुक्त आयोग' की दूसरी बैठक 17 से 19 सितम्बर, 1974 को मास्को में हुई। इसमें सोवियत सहायता से भारत में निर्मित तीन भारी व बिजली इंजीनियरी सयंत्रों—राँची-स्थित भारी-मशीन निर्माण संयंत्र, दुर्गापुर स्थित खनन व सम्बद्ध मशीनरी संयंत्र तथा हरद्वार-स्थित भारी विद्युत उपकरण संयंत्र—के सम्बन्ध में प्रमुख निर्णय लिये गए।

आयोग की दूसरी बैठक के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए 'द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' ने अपने 24 सितम्बर, 1974 के अंक में लिखा कि संलेख 'दोनों देशों के बीच सम्बन्धों के सुदृढ़ीकरण में एक और क़दम है।' इसमें यह भी उल्लेख किया गया कि दीर्घकाल में बाँधों व भंडारों के निर्माण में नियंत्रित परमाणविक विस्फोटों के प्रयोग में भारत के साथ अपने अनुभव व अपनी जानकारी को बाँटने के लिए सोवियत संघ का तैयार होना, मास्को में हुई इस बैठक का अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण परिणाम सिद्ध हो सकता है।

23 सितम्बर, 1974 को भारत के मशीनी कलपुर्ज़ों के उद्योग को अधुनातन बनाने व उसका विस्तार करने के सम्बन्ध में भारत यात्रा पर आये सोवियत विशेषज्ञों के एक दल के नेता व 'स्तान्कोज़ाग्रान्पोस्ताव्का' नामक मशीन-निर्यात संगठन के मुख्य इंजीनियर वी० के० ज़ुराव्लेव और भारी उद्योग मंत्रालय के संयुक्त सचिव एस० एम० घोष ने भारत-स्थित सोवियत दूतावास के आर्थिक विभाग में एक संलेख पर हस्ताक्षर किये।

यहाँ यह दोहराना आवश्यक है कि भारत के मशीनी कलपुर्ज़ों के उद्योग के विकास में सहयोग का, नवम्बर 1973 में हस्ताक्षरित सहयोग सम्बन्धी भारत-सोवियत क़रार में भी उल्लेख हुआ था, जिसमें यह तय किया गया था कि सोवियत विशेषज्ञों का एक दल मशीनी कलपुर्ज़ों के उद्योग का अध्ययन करने व इसके विकास की सम्भावनाओं का मूल्यांकन करने के लिए भारत की यात्रा करेगा।

1975 के भारत-सोवियत व्यापार संलेख पर वाणिज्य मंत्रालय के सचिव वाई० टी० शाह और सोवियत विदेश व्यापार के उपमंत्री आई० टी० ग्रीशिन ने 30 दिसम्बर, 1974 को नई दिल्ली में हस्ताक्षर किये जिसमें 700 करोड़ रुपये से अधिक कुल व्यापार की परिकल्पना की गयी थी।

संलेख के अनुसार सोवियत संघ भारत को यथेष्ठ मात्रा में उर्वरक, पेट्रोल-उत्पाद, अलौह धातु, इस्पात व इस्पात-उत्पादक, अख़बारी क़ागज़, एस्बेस्टस, तथा भारत में सोवियत सहायता से निर्मित परियोजनाओं के लिए उपकरणों व अतिरिक्त कलपुर्ज़ों की आपूर्ति करेगा। सोवियत संघ से आपूर्ति होने वाली सूची में सूरजमुखी के फूल का तैल, कपास, कम्प्यूटर विद्युत उपकरण तथा विभिन्न प्रकार की मशीनरी आदि शामिल थे। दूसरी ओर, सोवियत संघ भारत से चाय, मसाले, पटसन के सामान जैसे उसके परम्परागत निर्यात माल और साथ-साथ जूते, ऊन के बुने हुए सामान, बिजली के तार, बैटरियाँ, गैराज-उपकरण आदि जैसे उसके गैर-परम्परागत माल और अधिक मात्रा में ख़रीदेगा।

सोवियत संघ भारत को एक लाख टन मिट्टी का तैल और 2 लाख टन डीज़ल तैल की आपूर्ति करेगा।

भारत-सोवियत सहयोग की बीसवीं जयन्ती 2 फ़रवरी, 1975 को भारत व सोवियत संघ में सोत्साह मनाई गई। 'सोवियत भूमि' को दिये गए सन्देश में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा :

"सोवियत संघ के साथ मित्रता आड़े वक़्तों में हमारे काम आई है। मैं भारत-सोवियत आर्थिक सहयोग के विस्तार से सन्तुष्ट हूँ, जो परस्पर लाभदायक रहा है तथा भारत में हमारे औद्योगिक आधार के निर्माण में अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुआ है।"

उसी पत्रिका से एक इंटरव्यू में भारत के विदेश मंत्री वाई० बी० चह्वाण ने कहा :

"भारत-सोवियत मैत्री और पारस्परिक सद्भावना ने विश्व-शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को सुदृढ़ बनाने तथा उपनिवेशवाद, नव-उपनिवेशवाद, नस्लवाद एवं जातीय पृथग्वासन के अन्तिम अवशेषों को समाप्त करने के हमारे समान लक्ष्यों में भारी योग प्रदान किया है। व्यापार से एवं आर्थिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक क्षेत्रों में भारत-सोवियत सहयोग से आधुनिक औद्योगिक अर्थतंत्र के निर्माण में भारत के प्रयासों में अमूल्य सहायता प्राप्त हुई है। इस सहयोग के फलस्वरूप भारत में अनेक बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों और परियोजनाओं का निर्माण हुआ है...दोनों पक्ष विभिन्न क्षेत्रों में परस्पर-लाभदायक सहयोग के नये क्षेत्रों की सुसंगत रूप से खोज कर रहे हैं।"

योजना के क्षेत्र में वैचारिक आदान-प्रदान में मार्च 1975 में हुई सोवियत संघ के गोस्प्लान (राज्यीय योजना समिति) और भारत के योजना आयोग के प्रतिनिधि-मंडलों के बीच हुई सरकारी वार्ताओं का बहुत महत्त्व है। इससे योजना के लिए आवश्यक सांख्यिकी आधार तैयार करने और संगठित करने में यथेष्ठ लाभ हुआ है। नई दिल्ली में हुई वार्ताएँ दोनों देशों के बीच सहयोग, मित्रता और पास्परिक समझ सुदृढ़ करने की दिशा में प्रमुख क़दम थीं तथा यह भारत व सोवियत संघ के विशेषज्ञों के बीच व्यावहारिक-सम्बन्धों का नया प्रमाण हैं।

7

स्वाधीनता के शत्रुओं के विरुद्ध कवच

भारत और सोवियत संघ के लगभग एक अरब जनगण के बीच मित्रता एवं दोनों देशों के बीच सरकारी स्तर पर सम्बन्ध इस देश के साथ-साथ एशिया व तमाम विश्व में शान्ति व प्रगति के लिए अमूल्य है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यह मित्रता सिद्धान्तनिष्ठ आधारों पर टिकी हुई है। इसकी जड़ें गहरी हैं और यह दूरगामी है। लियोनिद ब्रेज़नेव की यात्रा के दौरान श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने एक भाषण में कहा था कि "कुछ आधारभूत सिद्धान्त हैं जो हमें एकताबद्ध करते हैं।" उन्होंने यह भी कहा कि यद्यपि कुछ ऐसे लोग हैं जो तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश कर जनता को गुमराह करने की कोशिश करते रहते हैं लेकिन "वास्तविकता तो यह है कि मित्रता के इतने वर्षों के दौरान सोवियत संघ ने एक बार भी हम पर दबाव नहीं डाला और न ही हम से यह कहा कि यह करो या यह न करो।" ब्रेज़नेव के सम्मान में 'इस्कस' द्वारा आयोजित एक स्वागत-सभा में श्रीमती गांधी ने कहा कि "यह मैत्री हमारी स्वतंत्रता पर किसी भी प्रकार का अंकुश नहीं लगाती। वस्तुतः यह अनोखी मैत्री है, जो हमें अपनी स्वतंत्रता को सुदृढ़ बनाने में सहायता प्रदान करती है।"

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के पोलिटब्यूरो के सदस्य, सोवियत संघ के रक्षा मंत्री और सोवियत संघ के मार्शल आन्द्रेई ग्रेच्को की सोवियत प्रतिरक्षा अध्यक्षों, विशेषज्ञों व विदेश कार्यालय के उच्च पदाधिकारियों के 16 सदस्यीय प्रतिनिधिमण्डल के रूप में 24 से 27 फ़रवरी, 1975 की भारत-यात्रा ने शान्ति व सुरक्षा के लिए संघर्ष में भारत के महत्त्व को सोवियत संघ में और अधिक उजागर कर दिया। यह यात्रा उस समय हुई जबकि भारतीय प्रतिरक्षा योजना पर कार्य किया जा रहा था। 1974-79 की पंचवर्षीय योजना की वार्षिक समीक्षा की जा रही थी ताकि "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों और उनके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले निश्चित "ख़तरों" के अनुरूप भारतीय प्रतिरक्षा-व्यवस्था को तैयार किया जा सके। प्रतिरक्षा मंत्रालय के अधिकारियों ने ऐसा विचार व्यक्त किया था।

यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना अनिवार्य है कि जिस दिन मार्शल ग्रेच्को भारत आये उसी दिन अमरीका ने पाकिस्तान को हथियार बेचने का अपना दस साल पुराना प्रतिबन्ध हटाने की घोषणा कर दी। किन्तु यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि इस यात्रा की व्यवस्था तो कुछ महीनों पहले कर ली गई थी। वस्तुतः इस घटना ने यह सिद्ध कर दिया कि सोवियत संघ शान्ति, सहयोग व प्रगति का सच्चा मित्र है। यह निश्चित प्रतीत होता है कि किसिंजर ने उपर्युक्त घोषणा के लिए यह वक्त जानबूझ कर चुना था ताकि बाद में यह कहा जा सके कि सोवियत संघ ने भारत को भारी मात्रा में हथियार दिये जाने की सम्भावना के सन्दर्भ में ही हमने यह फ़ैसला किया कि पाकिस्तान को हथियार बेचने पर लगी पाबन्दी को उठा लिया जाय। लेकिन तथ्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सोवियत संघ ने हमेशा की तरह इस उपमहाद्वीप में स्थिति के सामान्यीकरण में भारत के प्रयासों का स्वागत किया, जबकि संयुक्त राज्य अमरीका ने हमेशा की तरह गतिरोध पैदा किया और डराने व 'ब्लैकमेल' की नीति का पालन करते हुए वह इस क्षेत्र में स्थिति के सामान्य होने के पथ में बाधक सिद्ध हुआ।

नई दिल्ली आने पर मार्शल ग्रेच्को ने कहा कि उनकी यात्रा "हमारे दोनों जनगण व हमारी सशस्त्र सेनाओं" के बीच मौजूदा मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की 'पुष्टि' करती है।

मार्शल ग्रेच्को का स्वागत करते हुए सरदार स्वर्ण सिंह ने कहा :

"आपने हमारा निमंत्रण स्वीकार करके हमें विशेष आनन्द प्रदान किया। भारत व सोवियत संघ के बीच मित्रता व सहयोग मौजूद है, और मुझे आशा है कि ये सम्बन्ध इस यात्रा से परस्पर लाभ की दिशा में और अधिक सुदृढ़ होंगे।"

भारत के प्रतिरक्षा मंत्री सरदार स्वर्ण सिंह द्वारा 25 फ़रवरी, 1975 को को दिये गये भोज में मार्शल आन्द्रेई ग्रेच्को ने घोषणा की : "हमारी मित्रता की गहरी ऐतिहासिक जड़ें हैं, यह समय की कसौटी पर परखी जा चुकी है और किसी भी प्रकार की परीक्षा इसकी स्थिरता को कभी कमजोर नहीं बना सकती।" उन्होंने बल देकर कहा कि यह मित्रता "उन सारे सिद्धान्तों पर आधारित है जो राष्ट्रों को निकट लाते हैं, पारस्परिक सद्भावना, गहन सम्मान और निस्स्वार्थ पारस्परिक समर्थन का संवर्धन करते हैं।" उन्होंने घोषणा की कि सोवियत संघ की जनता के दिल में मित्र भारतीय जनता के प्रति सम्मान की गहरी भावनाएँ हैं। सोवियत जनता के हृदय में अपने घनिष्ठ एवं अच्छे पड़ोसी और विश्वासी मित्र के रूप में भारत के प्रति गहरी सहानुभूति की भावना है। वह भारतीय उपमहाद्वीप में स्थिति को और सामान्य बनाने के लिए होने वाले संघर्ष में पूर्ण-रूप से सहभागी है और उसका समर्थन करती है।

उन्होंने ऐलान किया :

"...संसार में अभी भी ऐसी शत्रुतापूर्ण ताक़तें मौजूद हैं, जो सशस्त्र संघर्ष छेड़ सकती हैं, मानवजाति को नये युद्धों में झोंक सकती हैं। इसीलिए हम सभी सद्भावना रखने वाले लोगों का आह्वान करते हैं कि वे चौकसी से काम लें और शान्ति के दुश्मनों की साज़िशों के खिलाफ़ सतर्कता बनाये रखें।"

सोवियत संघ के भारत-स्थित दूतावास में 26 फ़रवरी, 1975 को दिये गये भोज में आन्द्रेई ग्रेच्को ने अपने भाषण में कहा कि हमारे दोनों देशों की विदेश नीतियों के शान्तिपूर्ण प्रयास उन्हें और निकट लाते हैं तथा उनके आपसी लाभदायक सहयोग को मज़बूत करते हैं। "इसी आधार पर हमारे देशों की सशस्त्र सेनाओं के बीच सम्बन्ध विकसित हो रहे हैं।"

उन्होंने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की कि सैनिक नेताओं के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क और सैनिक प्रतिनिधिमण्डलों की पारस्परिक यात्राएँ मित्र देशों की सशस्त्र सेनाओं के बीच सद्भावना बढ़ाने के लिए अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होती जा रही हैं।

युद्ध-पिपासुओं की निन्दा करते हुए उन्होंने कहा :

"सोवियत सशस्त्र सेनाएँ न तो किसी के लिए खतरा है और न ही किसी के लिए ख़तरा पैदा करने जा रही हैं। वे अपनी सैनिक शक्ति को आवश्यक स्तर पर बनाये रखती है जिससे हमारी जनता के श्रम के लिए शान्तिपूर्ण स्थितियों की गारंटी बनी रहे। हम यह भली-भाँति समझते हैं कि संसार में अभी भी ऐसी बहुत सारी प्रतिक्रियावादी ताक़तें हैं, जो राष्ट्रों को नये युद्ध की ज्वाला में धकेल पाने में समर्थ हैं। इसे रोकने के लिए यह ज़रूरी है कि कठोर सतर्कता बरती जाये और सशस्त्र सेनाओं की पर्याप्त संघात-तत्परता क़ायम रखी जाये।"

शान्ति की हिफ़ाज़त करने में भारत के प्रयासों की गहरी प्रशंसा करते हुए मार्शल ग्रेच्को ने कहा :

"आपके देश की हमारी यात्रा यद्यपि अल्पकालिक रही, पर इसने हम पर ऐसा असर डाला जिसे भुलाया नहीं जा सकता। एक बार फिर हमें इस बात का यक़ीन हो गया कि भारत गणराज्य को शान्ति की हिफ़ाज़त में, अपने अर्थतंत्र के तेज़ी से विकास में, दूसरे देशों के साथ सहयोग के विस्तार में सच्ची दिलचस्पी है। अपनी स्वतन्त्रता को और मज़बूत बनाने के साथ-साथ भारत अपनी रक्षा-सामर्थ्य को विकसित करने का भी प्रयास करता है। अनेक सैनिक संस्थापनों की यात्रा करते समय हमने देखा कि सैनिक-कार्मिकों के संघात-प्रशिक्षण का स्तर काफ़ी ऊँचा है और उनमें अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा की सामर्थ्य है।"

मार्शल ग्रेच्को की भारत-यात्रा के अन्त में जारी की गई विज्ञप्ति में दोनों पक्षों ने कुछ क्षेत्रों द्वारा हथियारों की होड़ तेज़ किये जाने की कार्रवाइयों पर अपनी 'गंभीर चिंता' व्यक्त की। स्पष्टतः, यह संकेत अमरीका द्वारा पाकिस्तान

को हथियार बेचने पर लगे प्रतिबन्ध हटाने की ओर था। उन्होंने "बातचीत के ज़रिए और केवल शान्तिपूर्ण तरीक़ों से अन्तर्राष्ट्रीय सयस्याओं का हल निकाले" जाने के महत्त्व पर बल दिया।

दोनों देशों में इस क्षेत्र के सभी राज्यों के 'संयुक्त प्रयत्नों' से एशिया में शान्ति एवं स्थायित्व की हिफ़ाजत करने और उसे दृढ़ बनाने के प्रश्न को 'विशेष महत्त्व' दिया। सोवियत पक्ष ने उपमहाद्वीप के देशों के बीच शान्ति का वातावरण बनाये रखने, मुठभेड़ की स्थिति को मिटाने और सम्बन्धों के सामान्यीकरण का संवर्धन करने के लिये भारत द्वारा की गई पहल के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया।

सोवियत पक्ष ने एक बार पुनः भारत की गुट निरपेक्षता की नीति के प्रति अपने उच्च मूल्यांकन की पुनर्पुष्टि की। विज्ञप्ति में कहा गया : "सोवियत पक्ष ने गुट निरपेक्ष आन्दोलन की प्रगतिशील एवं साम्राज्यवाद-विरोधी दिशा का सकारात्मक मूल्यांकन किया, जिसके नेताओं में से भारत भी एक है, और विश्व शान्ति, सुरक्षा तथा सहयोग के दृढ़ीकरण का संवर्धन करने की गुटनिरपेक्ष देशों की आकांक्षाओं का समर्थन किया।"

दोनों पक्षों ने दोनों देशों के बीच दृढ़ मित्रता एवं बढ़ते सहयोग का उच्च मूल्यांकन किया और बल देकर कहा कि भारत-सोवियत मित्रता न केवल एशिया में, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में शान्ति के सुदृढ़ीकरण एवं स्थायित्व का एक महत्त्वपूर्ण उपादान है।

मार्शल ग्रेच्को ने मास्को लौटने पर कहा कि इस 'बुहत सफल, सुखद और लाभकारी' यात्रा ने समूचे विश्व को यह दिखा दिया है कि सोवियत संघ शान्ति, प्रगति और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का समर्थक है।

सोवियत संघ शान्ति स्थापना में कहीं भी बाधायें पैदा नहीं करता। इसके विपरीत अमरीका ने हर जगह कुकृत्य का समर्थन किया है। हमें यह पूरी तरह ज्ञात है कि सोवियत संघ समारे साथ हर कठिनाई में चट्टान की तरह अडिग रहा है। इसने प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत के न्यायोचित ध्येय का समर्थन किया है। मार्शल ग्रेचको के हाल के सद्भावना और मित्रता के मिशन ने दोनों देशों के बीच मौजूदा मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को और अधिक मज़बूत किया है। सरदार स्वर्ण सिंह ने अपने भाषणों के दौरान कहा था कि मार्शल ग्रेच्को की यात्रा ने मित्रता और शान्ति के लिये भारत और सोवियत संघ के आम प्रयासों की पुनर्पुष्टि की है।

इस भूमण्डल के दो शान्तिप्रिय राष्ट्रों के बीच सम्बन्धों का महत्त्व योजना आयोग के उपाध्यक्ष पी० एन० हक्सर ने सारगर्भित शब्दों में व्यक्त किया था। नई दिल्ली में 14 से 16 मार्च, 1975 को 'इस्कस' द्वारा आयोजित 'भारत-

सोवियत सहयोग के नये संदर्श' गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए हक्सर ने कहा कि भारत और सोवियत संघ के बीच सहयोग न केवल पारस्परिक हित में है बल्कि हमारी इस छोटी-सी दुनिया की शान्ति और प्रगति के भी हित में है। दोनों देशों की अन्तरनिर्भरता की अनुभूति अधिकाधिक होती जा रही है और दोनों देश यह समझ चुके हैं कि सार्वजनीनता, पंचशील और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की दीर्घ परम्परा सहित उनके बीच सहयोग नैतिक कर्त्तव्य और व्यावहारिक आवश्यकता बन चुकी है। उन्होंने भारत और सोवियत संघ जैसे विशाल, विविधतापूर्ण और ऐतिहासिक रूप से एक-दूसरे से भिन्न देशों की समस्याओं के लिये सहानुभूति का विकास किया है।

रूसी जनतंत्र संघ के भूविज्ञान मंत्री तथा सोवियत प्रतिनिधिमण्डल के नेता डॉ० एल० आई० रोव्निन ने इस गोष्ठी में कहा कि अभी हाल तक कुछ तत्त्व ऐसे थे, जो यह कहा करते थे कि भारत और सोवियत संघ के बीच मित्रता में सोवियत संघ का कुचक्र छिपा हुआ है और वह है भारत को गुलाम बनाना। लेकिन आजकल सोवियत सहायता से निर्मित उद्योग 30 प्रतिशत धातुकर्म उपकरण, 60 प्रतिशत भारी बिजली के उपकरण और 50 प्रतिशत से अधिक तेल का उत्पादन करते हैं। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि सोवियत संघ भारत को आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर बनाने तथा उसकी राष्ट्रीय अखंडता, स्वतन्त्रता व सम्मान को क़ायम रखने में निस्वार्थ सहायता कर रहा है ?

भारत सोवियत सहयोग का आयाम व्यापक है और दिन प्रतिदिन इसे नया-से-नया रूप प्राप्त हो रहा है।

भारत से मित्रता और सहयोग सोवियत संघ की विदेश नीति का अभिन्न अंग है और भारत भी सोवियत संघ के साथ अपने सम्बन्ध सुदृढ़ करने को उच्चतम महत्त्व देता है। इसीलिये, यह मित्रता एक चरण से दूसरे नये चरण की ओर अग्रसर होती जाती है। लियोनिद ब्रेझनेव और मार्शल ग्रेचको की राजकीय मैत्रीपूर्ण यात्राएँ असंदिग्ध रूप से महत्त्वपूर्ण घटनायें थीं, लेकिन अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि वे हमारी फलप्रद यात्रा का अन्त नहीं हैं।

भूमण्डल के प्रत्येक भाग पर जब तक शान्ति, न्याय, समृद्धि और स्वाधीनता स्थापित नहीं हो जाती तब तक दोनों महान देशों की खोज और संयुक्त प्रयास जारी रहेंगे। अन्ततः, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत-सोवियत सहयोग और भारत को दी गई सोवियत आर्थिक सहायता भारत को नव-उपनिवेशवादी षड्यंत्रों के विरुद्ध एक कवच तथा एक ऐसा अस्त्र प्रदान करती है, जिसका वर्तमान आर्थिक उत्पीड़न के विरुद्ध जनगण के संघर्ष में प्रभावशाली ढंग से पंक्तिबद्ध होकर प्रयोग किया जाना चाहिए।